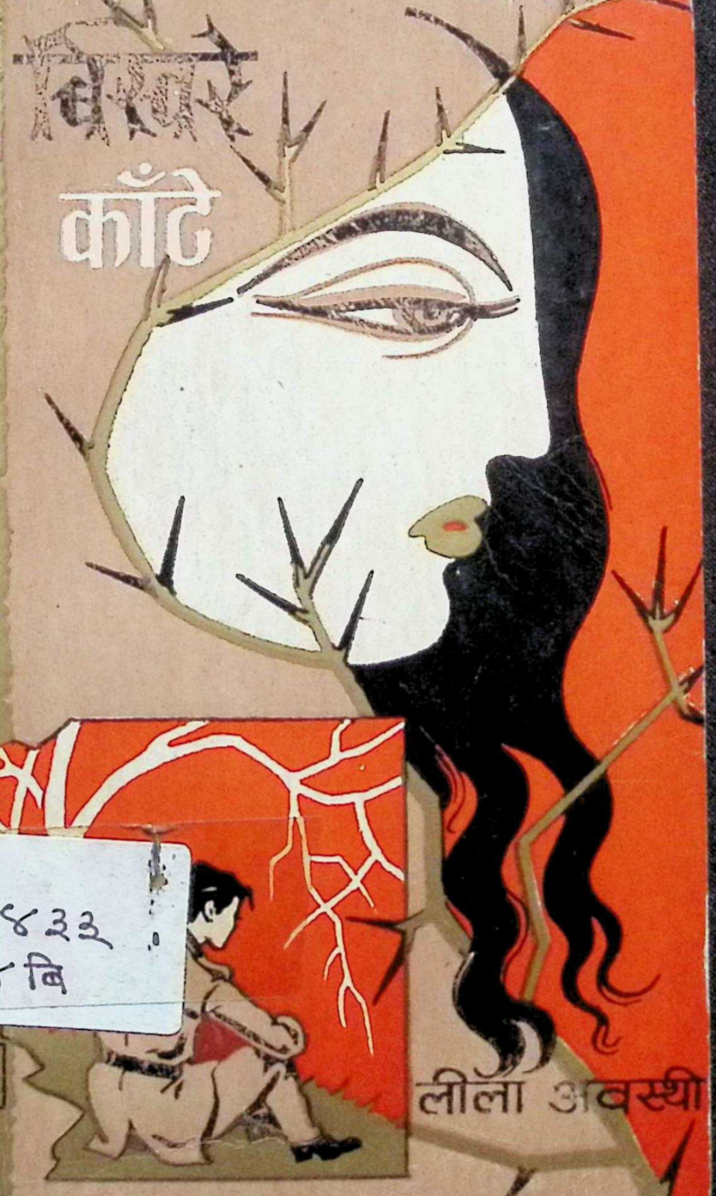
बिखरे काँटे



लीला अवस्थी

1/-

विक्रम और नलू के सरल सीधे जीवन एवं आचरण में बिखरे काँटे हमारे समाज के न जाने कितने विक्रम और नलू के पैरों में चुभ कर टीस उत्पन्न कर रहे हैं। 'बिखरे काँटे' उपन्यास इस समस्या का समाधान ढूँढ़ने में नया दृष्टिकोण उपस्थित करता है।

●

लीला अवस्थी हिन्दी की प्रतिभाशालिनी लेखिका हैं। सरल-सरस शैली में वर्णित उनका यह उपन्यास अत्यन्त रोचक है। लेखिका ने इस उपन्यास के माध्यम से समाज की जर्जर मान्यताओं पर प्रहार किया है।

प्रचारक पॉकेट बुक्स का प्रयास उत्कृष्ट मौलिक एवं अनूदित साहित्य को कम से कम मूल्य में प्रस्तुत कर हिन्दी साहित्य की श्री-वृद्धि करना है।

प्रचारक पॉकेट बुक्स सं०—३

बिखरे काँटे

लीला अवस्थी

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

3—BIKHARE KANTE—Lila Awasthi : NOVEL

प्रथम संस्करण

१९६०

1/-

प्रकाशक : हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी–१
मुद्रक : विद्यामन्दिर प्रेस (प्राइवेट) लि०, वाराणसी–१
चित्रकार : कांजिलाल

: १ :

वारन्ट आफिसर विक्रम पांडे अपने कमरे से निकल कर लिफ्ट को ओर जाने लगे। सेक्रेटेरियट के साउथ ब्लाक के कमरों से वर्दी पहने हिन्दुस्तानी एवं गोरे लोग निकल-निकल कर लिफ्ट की ओर जा रहे थे। खाने की छुट्टी हो चुकी थी; अतः भूख के कारण लोग लिफ्ट के लिये ठहर नहीं सके। सब खड़-खड़ करते हुए सीढ़ियों से उतरने लगे। साथ में विक्रम पांडे भी सीढ़ियों से उतरने लगा। फिर सब साउथ ब्लाक के पिछवाड़े खड़ी ट्रकों में लद-लद कर अपने-अपने मेस में जाने लगे। एक के बाद एक ट्रक छूटने लगी, कोई इरविन स्टेडियम की ओर, कोई शेरशाह मेस की ओर और बाकी अन्य मेसों की ओर। विक्रम पांडे ट्रक में बैठने के बदले घास पर जा बैठा, उसे आज भूख नहीं थी। भावी चिन्ताओं ने उसे अभिभूत कर रखा था।

कुछ क्षण तो विक्रम बैठा घास तोड़ता रहा, फिर अनायास ही उसकी दृष्टि सामने स्थित साउथ और नार्थ ब्लाक्स पर पड़ी। उनके गुम्बदों के दायें-बायें उड़ते हुए यूनियन जैक्स पर उसकी दृष्टि जम कर रह गई। बढ़िया रेशम के बने यूनियन जैक्स धूप में चम-चम चमक रहे थे। यूनियन जैक्स को देखकर उसके मन को, जो बालापन से ही देश प्रेमी था, एक धक्का-सा लगा। उसकी व्यक्तिगत चिन्ता क्षण भर को देश-प्रेम के भावों के नीचे दबकर रह गई। उसने सोचा—अगर इस रेशम के यूनियन जैक्स के स्थान पर हाथ के कते मोटे सूत का हमारा कांग्रेसी झंडा उड़ता होता तो हम हिन्दुस्तानियों को इस खाकी वर्दी में कितना गर्व

होता ! जब तक यूनियन जैक उड़ता रहेगा, फौज एवं सरकारी दफ्तरों में हिन्दुस्तानियों का सिर सदा नीचा रहेगा।

विक्रम जब कालेज में पढ़ता था, देश की स्वतन्त्रता के प्रति वह तभी से जागरूक था। देश में चल रहे स्वतंत्रता संग्राम के प्रति उसकी अपूर्व आस्था थी। उसकी देश-भक्ति एवं स्वातन्त्र्य भावना केवल विचारों की चहारदीवारी तक सीमित न थी; वह सक्रियता के मैदान तक विस्तृत थी। कांग्रेस के जुलूस जब निकलते तो वह बड़े उत्साह से उनमें भाग लेता और कांग्रेस की ओर से होने वाली प्रत्येक सभा में भी भाग लेता। 'गांधी जी की जय' 'नेहरू जी की जय'—और 'इन्कलाब ज़िन्दाबाद' के नारों में उसका स्वर भी पूर्ण शक्ति से सम्मिलित होता और उसका चेहरा गर्व से चमक उठता। कांग्रेस की सभाओं में वह अकसर वालंटियर बन जाता और बैज लगा कर सभा में यहाँ-वहाँ दौड़-दौड़ कर कार्य करता। उसे विश्वास था कि यदि सभी लोग कांग्रेस के साथ हो जाएँ तो अंग्रेजों को दो दिन में इस देश से कान पकड़कर निकाला जा सकता है।

फिर १९४२ का समय आया। भारत का बच्चा-बच्चा जैसे विद्रोह कर उठा। ऐसा लगा कि अंग्रेजी राज को भारत की विशाल जनता निगल जाएगी; किन्तु उसके देखते ही देखते अंग्रेजों का दमन प्रारम्भ हुआ। दमन भी ऐसा, जिसके कारण हजारों की संख्या में सती नारियों का सुहाग लुट गया, स्नेहमयी माताओं की गोद सूनी हो गयी और 'भैया' पुकारने वाली बहनों के ओठ सूख गये। उन पर अत्याचार होने लगे। उसने सुना कि जेलों में इन नेताओं को बर्फ की सिल्लियों पर तब तक रखा जाता था, जब तक वे बेहोश न हो जायें। उनको खटमल, पिस्सू, बिच्छू आदि जन्तुओं से भरे कमरे में छोड़ दिया जाता था। उनकी रोटी में पिसा कांच मिला दिया जाता था।

इन सब बातों को सुनकर विक्रम रोमांचित हो उठता और

उसकी युवा नसें फड़क-फड़क उठतीं। उसकी इच्छा होती, वह भी इस आन्दोलन में कूद पड़े और क़ैद हो जाए। देश के लिए वह भी दुःख उठाए, त्याग करे। परन्तु तब तक वह जिन्दगी की मजबूरियों से जकड़ा जा चुका था। उसके पिता का देहान्त हो गया और उसके निर्बल कंधों पर उसकी बूढ़ी माँ, बहन और स्वयं के लिये रोटी कमाने का बोझ पड़ गया। वह बी० ए० के अन्तिम वर्ष में था और तब उसके चाचा-चाची पिता का कारोबार देखते थे।

जब वह बी० ए० पास कर चुका तो आन्दोलन का दमन हो चुका था। उसने चाचा-चाची से जब हिसाब माँगा और अपना कारोबार अलग करना चाहा तो उन्होंने उसे साफ-साफ कह दिया कि उनके पास कुछ भी नहीं है। आखिर उसे नौकरी की तलाश में दर-दर भटकना पड़ा, क्योंकि उसके पिता ने कोई वसीयत नहीं छोड़ी थी और चाचा के साथ कभी हिसाब नहीं किया था। उसके पिता ने मरते समय विक्रम से केवल इतना कहा था—'माँ, बहन को सुखी रखना बेटा। इनके आँसुओं से मुझे परलोक में भी पीड़ा होगी।'

और पिता के इन शब्दों को गाँठ बाँध कर विक्रम अन्त में अपने विचारों को दबा फौज में भरती होकर दिल्ली आ गया। दिल्ली आकर उसकी जिन्दगी इंडिया गेट सेक्रेटेरियट के विभिन्न विभागों और इरविन स्टेडियम मेस में कटने लगी। इसी प्रकार उसके साढ़े तीन साल कट गये। इस अवधि में वह प्रायवेट से कारपोरल, कारपोरल से सारजेन्ट, सारजेन्ट से सारजेन्ट मेजर और २ जनवरी १९४६ को सारजेन्ट मेजर से वारन्ट आफिसर बन गया था। वारन्ट आफिसरी का ओहदा ठीक एक वर्ष भुगत चुकने पर आज उसे बता दिया गया था कि उसे एक महीने बाद ए क्लास में रिट्रेन्च कर दिया जायेगा। अर्थात फौज से छुट्टी दे दी जायगी। यह समाचार उस पर बिजली की तरह कौंध गया और वह मेस में खाना खाने के बदले किंग्जवे के सिरे पर घास

पर बैठ कर भविष्य की चिन्ता में लीन हो गया। दोनों ब्लाक के बीच की ढलवाँ सड़क जो वायसरिगल लाज की ओर जाती थी, उसे वह देख रहा था और देख रहा था सामने खड़े पुलिस को जो ट्रैफिक कंट्रोल कर रहा था। उसकी नजर सामने बड़े-बड़े फौवारों पर भी पड़ी और याद आया कि किसी ने कहा था कि दिल्ली का यह सेक्रेटेरियट एशिया का सबसे बढ़िया सेक्रेटेरियट है।

विक्रम फिर घास तोड़ने लगा।

नौकरी की समाप्ति का आर्डर उसके लिए मिश्रित भाव लेकर आया। भविष्य की अनिश्चयता और बेकारी की विभीषिका जहाँ उसके मन में एक ओर चिन्ता उत्पन्न कर रही थी, वहीं उसे माँ और बहन की याद दिला कर व्यथित भी कर रही थी। अब क्या होगा?

उसने सोचा, फिर नौकरी के चक्कर में सड़कों पर चप्पल चटकाते फिरना होगा और मुँह चिढ़ाते 'नो वेकेन्सी' के बोर्ड उसका परिहास करेंगे।—किन्तु इस गुलामी की नौकरी में सोया तेरा देश प्रेम! यह भाव अचानक ही उसके मानस-क्षितिज पर उदय हो उठा था। कहा नहीं जा सकता कि वह विवशताजन्य था अथवा सुषुप्तावस्था में सोया भाव, जो उसे इस नौकरी के छूटने पर प्रसन्न करना चाहता था और उससे कहता था—अच्छा हुआ कलंकित नौकरी से पीछा छूटा। जिस नौकरी से पेट को तो रोटी मिलती रहे; परन्तु आत्मा रोती रहे, उस नौकरी से क्या लाभ? साढ़े तीन साल से वह अपने मन को मारता आ रहा था। जो अंग्रेज भारतवासियों का खून चूस रहे थे, वह उन्हीं पिशाचों की सेवा-टहल कर रहा था, जिससे उनकी नींव और भी पक्की हो जाय और वे लोग उसके अपने देश वासियों का खून चूस सकें। लानत फेंको ऐसी जिन्दगी पर और ऐसी नौकरी पर।

विक्रम उसी लानत भरी जिन्दगी और नौकरी को ढोता चला आ रहा था—एक दो दिन से नहीं; पूरे साढ़े तीन साल से। इस

अवधि में उसने अपने मन को इतना दबाया था कि उसकी सब कोमल आकांक्षायें, इच्छायें और उन्नति करने की लालसाएँ सिसक-सिसक कर मर गईं।

इस नौकरी में कुछ दिनों बाद ही विक्रम को लगने लगा कि वह एक मशीन हो गया है। मशीन, जो समय पर सब कार्य करती है, वैसे ही वह भी कार्य करता है। खाने की छुट्टी हो तो खाना खा आता है, दफ्तर छूटने पर वह इंडिया गेट, कनाट प्लेस घूम आता है बिना किसी इच्छा के, बिना किसी विचार के। कभी-कभी उसे यह खटकने लगता, परन्तु कुछ काल बाद वह 'खटक' भी पता नहीं कहाँ लुप्त हो गई। केवल दो रोटी के लिये उसने अपने मन को, आत्मा को मार कर रख दिया था। न जाने क्या बात थी कि विक्रम को इस सब पर ताज्जुब भी नहीं होता था।

विक्रम का कोई दोस्त नहीं था। वह अकेला ही रहता। मेस में उसके कमरे में तीन और लोग भी रहते थे, परन्तु वह उन लोगों से कभी घुल मिल नहीं सका। दफ्तर में साथ काम करने वालों से कम-से-कम बोल कर काम निकालता। महीने में एक बार वह माँ को पैसे भेजता और एक पत्र लिखता। जब उत्तर में माँ का पत्र आता तो वह उसे एक बार पढ़ कर फाड़ कर फेंक देता। मुख पर न प्रसन्नता की रेखा दौड़ती और न ही अप्रसन्नता की। यह सब भी जैसे दफ्तरी 'रूटीन वर्क' था, जिसे नियमपूर्वक पूर्ण करना पड़ता था।

विक्रम के साथ काम करने वाले कुछ लोग उसको क्रोधी समझ कर दूर रहते तो कुछ लोग उसे घमंडी समझकर उससे घृणा करते। परिणाम स्वरूप विक्रम में और दफ्तर के अन्य कर्मचारियों के बीच एक रिक्त स्थान पैदा हो गया था। विक्रम का मन तड़प कर मर गया, क्योंकि वह होना कुछ चाहता था और हो कुछ और गया था। वैसे तो जानवर भी पेट भर लेता है, परन्तु जब इंसान केवल पेट के चक्कर में पड़ जाता है तो उसे अपना

अहम्, संवेदनशील मन और चेतन बुद्धि का बलिदान देना पड़ता है....और फिर एक चलती-फिरती लाश की तरह उसे अपना लम्बा जीवन बिताना पड़ता है।

तभी उसके सामने से एक मोटा-तगड़ा कुत्ता दुम ऊँची उठाये निकल गया। विक्रम को लगा जैसे इंसान के जीवन से जानवर का जीवन अच्छा है। सब से तुच्छ जानवर यह कुत्ता कैसा सिर उठाये गर्वपूर्वक चला जा रहा हैं। इंसान अपने आपको सभ्य कहता है। यह कुत्ता किस शान से चला जा रहा है, यह असभ्य तुच्छ कुत्ता ! परन्तु सभ्य इंसान कहला कर भी वह कल सिर उठा कर नहीं चल सकेगा। उसकी अपनी परेशानियाँ हैं, घर का दवाव है और समाज में आदर से जीने का डर है। रोटी कमाने की आवश्यकता उसे जानवर के स्तर से भी नीचे गिरा देती है—और वह उसी स्थिति में अपना जीवन जिये जाता है—दिन-रात, रात-दिन, माह-वरस, युग, जवानी, वृद्धावस्था-सफेदवाल, काँपती हुई गर्दन और श्मशान-चिता !! ऐसे जीवन की लीक को तो क्रांति ही मिटा सकती है—महान क्रांति, घोर क्रांति। और तब, उस समाज की रचना होगी, जिसमें सब खुश होंगे, सब आजाद होंगे, वर्ग-वैषम्य नहीं होगा। अमीर गरीव की खींचातानी नहीं होगी, सब ओर एकता होगी, इंसान इंसान के महत्वको पहचानेगा और फिर सब का स्वत्व सुरक्षित होगा, सब सिर उठाकर चल सकेंगे और जिन्दगी को जिन्दगी की तरह जी सकेंगे।

'सर, आप से एक जरूरी काम है अगर आप दो मिनट दे सकें तो ?' मोहन गुप्ते ने विक्रम को चौंका दिया।

मोहन सारजेन्ट मेजर था और विक्रम के नीचे काम करता था। इन दोनों में बातचीत कभी 'हेलो' से अधिक नहीं हुई थी। दफ्तर का काम वह कम-से-कम बात कर के चला लेते थे। विक्रम ने जव मोहन को सामने देखा तो अचम्भे में पड़ गया। बोला—

'हलो, सारजन्ट मेजर। क्या काम है मुझसे ?'

मोहन चुपचाप उसके सामने खड़ा रहा। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह अपनी बात कहाँ से शुरू करे। विक्रम का गंभीर स्वभाव भी उसे मन की बात कहने से रोक रहा था।

विक्रम को यह सब समझते देर न लगी। उसने स्नेह से कहा—

'बैठो मोहन, बताओ न क्या बात है ?'....फिर कुछ रुककर बोला—'ओ अब इन पट्टियों की चिन्ता मत करो। अब तो हम-तुम दोनों ही सिविलियन होने जा रहे हैं।'

मोहन बैठ गया। आँख उठाकर विक्रम को देख कर बोला—

'सर........'

'अब यह सर-वर करना छोड़ो।' विक्रम ने कहा—'भाई भाई को सर कहकर बुलाता है क्या ? इस देश का हर आदमी भाई-भाई है और फिर अभी तो हम दोनों आफिस में नहीं हैं।'

मोहन मुस्कुराया और बोला। 'महीने भर बाद तो आपको यहाँ से छुट्टी मिल जायेगी और आप जबलपुर लौट जायेंगे।'

'महीने भर बाद मुझे छुट्टी मिल जायेगी, यह तो ठीक है पर उसके बाद मैं घर लौट जाऊँगा, यह आपको किसने कह दिया ?' विक्रम ने प्रश्न चिन्ह खड़ा कर दिया।

'किसी ने मुझे बताया तो नहीं, पर मेरा अनुमान था।' मोहन ने कुछ झिझक कर उत्तर दिया।

'नहीं, मैं घर नहीं लौटूँगा।' विक्रम ने कहा।

'इसके मायने हैं आप जबलपुर तक का रेल्वे वारन्ट नहीं लेंगे ? इसमें तो आपका नुकसान है। अभी नहीं तो कुछ दिन बाद आपको घर जाने की इच्छा होगी ही। तब आपको अपने पैसे खर्च करने पड़ेंगे। इससे तो अभी वारन्ट लेकर घर हो आइये। फिर नौकरी ढूँढने निकल जाइये। हाँ, जाने के पहले

यहाँ के एम्पलायमेन्ट एक्सचेंज में अपना नाम जरूर लिखा जाइये।' मोहन ने हिम्मत बाँधकर कहा।

'तुम भी ठीक कहते हो।' स्वर गिराते हुए विक्रम ने उत्तर दिया।

मोहन को लगा कि उसका निशाना ठीक बैठ गया है। वह कहता गया—'मैं तो अपना वारन्ट छोड़ूँगा नहीं, चाहे मैं अपने घर न जाऊँ।'

'घर नहीं जाओगे तो वारन्ट का क्या करोगे ?'

'कुछ तो करूँगा ही, पर अभी कुछ सोचा नहीं है।' मोहन ने उत्तर दिया।

दो क्षण चुप्पी रही। मोहन ने जेब से सिगरेट केस निकाल कर खोला और विक्रम के सामने बढ़ाया। विक्रम ने कहा—'अभी पीने की इच्छा नहीं है।'

'ले भी लीजिये', सिगरेट केस से एक सिगरेट निकाल कर देते हुए मोहन बोला।

'जैसी तुम्हारी मर्जी' और विक्रम ने वह सिगरेट ले ली। सिगरेट जलाते हुए उसने कहा—'मोहन, सच पूछो तो मेरा इरादा जबलपुर न जाकर सीधे नागपुर जाने का है। नागपुर में मेरा एक मित्र है। मुझे विश्वास है, वह मुझे कोई न कोई नौकरी वहाँ अवश्य दिलवा देगा........हाँ, नौकरी मिलते ही मैं जबलपुर चला जाऊँगा और माँ और बहन को नागपुर ले आऊँगा।'

मोहन की बाछें खिल गईं। उसने कहा—'तब तो मेरा काम अवश्य हो जाएगा।'

'क्या काम है तुम्हारा ? तुमने तो कुछ बताया ही नहीं' विक्रम ने उत्सुकता से पूछा।

'मुझे कुछ गहने नागपुर भेजने हैं। अगर आप जबलपुर का वारन्ट कटा लेते तो मैंने सोचा था कि वह गहने मैं नागपुर पहुँचाने के लिये आपको........।'

बात काटते हुए विक्रम बोला—'तो आप ही क्यों नहीं वारन्ट कटा कर नागपुर चले जाते ?' मोहन क्षण भर चुप हो गया। उसका चेहरा उदास हो गया जैसे किसी कटु-स्मृति ने उसे अभिभूत कर लिया हो। फिर बोला—'मेरी कुछ ऐसी मजबूरी है कि मैं जा नहीं सकता।'

'ऐसी क्या मजबूरी है। विक्रम ने पूछा।'

'वह सब जान कर आप क्या करेंगे ?' मोहन ने बुझे हुए स्वर में कहा।

'सुन कर कुछ करूँ या न करूँ; लेकिन पता तो लगे ऐसी क्या बात है।' विक्रम ने पूछा।

'आप के पास क्या कुछ कम परेशानियाँ है जो दूसरों की परेशानियाँ भी जानना चाहते हैं।' मोहन ने फीकी हँसी हँसते हुए कहा।

'आप को कैसे मालूम हो गया कि मेरे पास बहुत परेशानियाँ है ?' विक्रम ने पूछा।

'मैं देखकर बहुत कुछ समझने का अभ्यस्त हो गया हूँ पांडे साहब ! खैर, असल में बात यह है कि मैं नागपुर का रहने वाला हूँ। मेरे माता, पिता, बहन और एक छोटा भाई वहीं रहते हैं। हम बहुत गरीब थे, इसलिये मैं फौज में भर्ती हो गया। जब मैं नागपुर छोड़ कर आने लगा तो माँ ने कहा था, मेरे लिये कानों की कुंडी लाना और बहन ने गले की चेन मँगाई थी। भाई की इच्छा थी कि एक अँगूठी उसके लिये बनवा दूँ। आहिस्ते-आहिस्ते मैंने सब जमा कर लिया और एक दिन पार्सल कर भेज दिया।'

'कुछ दिनों के बाद मैंने इनिट डोलटन से शादी कर ली और घर वालों ने मेरे भेजे गहने वापस कर दिये और लिखा कि हम लोग तेरे लिये मर गये हैं। मुझे बहुत बुरा लगा। मैंने चाहे अच्छा किया या बुरा; पर मैं चाहता था कि मेरे बहन-भाई मेरी कमाई के गहने, जो मैंने इतनी चाव से बनवाए थे, जरूर पहनें। मुझे

मालूम है कि मेरी बहन गहनों की कितनी शौकीन है और उसने मन मसोस कर गहनों को वापस किया होगा। माँ के कान जिन्दगी भर नंगे रहे और जब कुडी बन गई तो भी यों ही पड़े रह जाएँ। अगर आप उन गहनों को मेरी माँ तक पहुँचा कर यह कह दें कि मोहन न जाने कहाँ चला गया है, इसलिये इन गहनों को अपने पास रख लें, वापस न भेजें, तो वह लोग अवश्य इन्हें रख लेंगे।'—मोहन का स्वर गीला हो गया।

'बहुत दर्दनाक कहानी है तुम्हारी। पर तुमने ईसाई लड़की से शादी क्यों की, जब तुम्हें मालूम था कि तुम्हारे घर वाले यह शादी पसन्द नहीं करेंगे।' विक्रम ने प्रश्न किया।

नजर नीची झुका घास तोड़ते हुए मोहन ने झिझकते हुए कहा—'बात यह है, कि ईनिट और मैं साथ-साथ कार्य करते थे। धीरे-धीरे ऐसा कुछ हुआ कि हम बहुत मिलने-जुलने लगे। इस तरह एक साल निकल गया। फिर एक दिन पता लगा कि ईनिट माँ बनने वाली है। मेरे सामने दो रास्ते थे एक तो ईनिट को उस दशा में छोड़ कर अलग हो जाता या उसे स्वीकार कर लेता। किन्तु सच पूछिये तो इस तरह से अलग हो जाना कायर पुरुषों का काम है। मैं और चाहे कुछ भी हो सकता था, परन्तु एक अबला को इस असहाय अवस्था में छोड़ कर कायरता नहीं दिखा सकता और फिर उस नारी के साथ, जो मुझे प्राणों से अधिक चाहती है, मुझ पर प्राण न्योछावर करती है। यदि इसकी हाय से मेरी बहन पर इसी प्रकार का संकट आता, तब तो मैं पागल हो जाता। इसलिये मैंने फैसला कर लिया कि चाहे जो कुछ हो; पर मैं ईनिट से शादी कर लूँगा।'

'ईनिट शादी के लिये मान गई ?' विक्रम ने पूछा।

'जी हाँ, जैसे ही मैंने उससे पूछा, वह बिना किसी हिचक-झिझक के मान गई।' मोहन ने उत्तर दिया।

'तुमने बहुत साहस का काम किया। जी चाहता है, तुम्हारी

पीठ थपथपा दूँ। मुझे पता नहीं था कि मेरे साथ काम करने वालों में तुम जैसा बहादुर भी है। मैं तुम्हारा काम जरूर करूँगा। मैं नागपुर तो जा ही रहा हूँ। हाँ मोहन, मैं यहाँ भी कोशिश कर रहा हूँ, अगर मुझे यहीं काम मिल गया तो मैं तुम्हारा काम न कर सकूँगा। बुरा न मानना।' विक्रम ने कहा।

'खैर अगर आप जायें तो मेरा काम जरूर कर दीजिये।' मोहन ने प्रार्थना की।

'हाँ, हाँ, अगर जाऊँगा तो तुम्हारा काम ही सबसे पहले कर दूँगा।' विक्रम ने वचन दिया।

दो क्षण चुप्पी छा गई। फिर मोहन बोला—'चलो दफ्तर चलें, लंच-टाइम खत्म हो गया है।'

विक्रम और मोहन उठ कर दफ्तर की ओर चल दिये।

दफ्तर पहुँच कर विक्रम का ध्यान बार-बार मोहन की ओर खिंच जाता। इस मोहन में कितना बड़ा व्यक्तित्व छिपा है—वह कायर नहीं था, इसलिये उसने ईनिट को कलंकित कर नहीं छोड़ा—उससे शादी कर ली। उसने घर और समाज की परवाह नहीं की, इसलिये समाज की नजरों में मोहन अधम है, माँ बाप की नजरों में वह बुरा है और वे उससे नाता-रिश्ता नहीं रखना चाहते हैं, इसीलिये उसके भेजे गहने अछूत हो गये। कैसा है यह समाज और उसकी मान्यताएँ कि जो कायर नारी को कलंकित कर के छोड़ देते हैं, उनका इस समाज में मान है, आदर है; परन्तु मोहन जैसे फौलादी उसकी दृष्टि में बुरे हैं।'

अभी तक विक्रम के दिमाग में उसकी भावी नौकरी और बहन के विवाह का प्रश्न ही चक्कर खाया करता था; परन्तु मोहन से मिल कर उसकी कहानी भी उसके मस्तिष्क में चक्कर खाने लगी। साढ़े तीन वर्षों से एक दफ्तर में काम करते हुए भी जिस मोहन से वह घुल-मिल न सका, उससे अन्तिम महीने में वह

अभिन्न हो गया। विक्रम को सदा यह अनुभव होता कि मोहन के अन्दर एक महान व्यक्ति है।

अवाध गति से कटने वाला समय कटा और विक्रम के दिन फौजी नौकरी में पूरे हो गये। उसे एक फरवरी १९४७ को फौज से छुट्टी मिल गयी। ग्रेच्यूटी के पैंसे उसने अलग रख दिये, बहन की शादी के लिये। जबलपुर तक का रेल्वे वारंट उसके पास था ही। अपनी अन्तिम तनख्वाह उसने नौकरी ढूँढ़ने के कार्य के लिये सुरक्षित रखी और उसने तय कर लिया कि वह सीधा नागपुर चला जाएगा। अपने नागपुर के मित्र को उसने इस आशय का पत्र भी लिख दिया। उसका मित्र जिस होटल में रहता था, वहीं का पता उसने अपने आफिस में दे दिया कि कोई पत्र उसके नाम से आये तो उसे 'रीडायरेक्ट' कर दिया जाए; यद्यपि उसे विश्वास था कि कोई पत्र उसके पास नहीं आएगा।

विक्रम जब नागपुर पहुँचा तो उसने निश्चय किया कि वह उसी होटल में ठहरेगा, जिसमें उसका मित्र ठहरा हुआ है भले ही ऐसा करने में कुछ अधिक खर्च क्यों न हो जाए। विक्रम रिक्शा कर जब उस होटल में पहुँचा तो उसे बड़ी निराशा हुई। उसका मित्र कुछ ही दिनों पूर्व वहाँ से बम्बई चला गया था और उसके शीघ्र आने की कोई आशा नहीं थी। विक्रम का पत्र होटल के नोटिस बोर्ड पर पड़ा उसकी बेबसी पर आँसू बहा रहा था।

फिर भी विक्रम ने निश्चय किया कि जब वह नागपुर आ ही गया है तो यहाँ रह कर वह नौकरी क्यों न ढूँढ़े। वह बहुत थका हुआ था, अतः पहले दिन उसने आराम किया और शाम को जा कर मोहन के घर उसके गहने और समाचार पहुँचा दिया।

दूसरे दिन, तीसरे दिन और चौथे दिन विक्रम सड़कों और दफ्तरों की खाक छानता फिरा, परन्तु उसे कोई नौकरी नहीं मिली। चौथे दिन जब वह लौटा तो एकदम निराश हो चुका था और उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि क्या करे।

जब वह होटल के नोटिस-बोर्ड के पास से गुजरा तो उसकी नज़र क्षण भर बोर्ड पर रुक गई। उसके नाम एक पत्र था जो दिल्ली से 'रीडायरेक्ट' किया गया था। पत्र का पता देखते ही उसने जान लिया कि उसके घर से आया है और माँ का लिखा हुआ है। उसने वहीं खड़े-खड़े पत्र पढ़ा और वहाँ से सीधे होटल मैनेजर के पास जा पहुँचा। उनका हिसाब-किताब साफ कर उसने मैनेजर को सूचित कर दिया कि वह कल सबेरे होटल से जा रहा है।

: २ :

विक्रम जब पूर्व परिचित जबलपुर बस स्टैंड पर उतरा तो संध्या रानी की चूनर में टँके सितारे टिमटिमा उठे। बस लेट थी। प्रायः सब मुसाफिर मन ही मन कुढ़ रहे थे। कुढ़न मन में नहीं समाती तो बोल फूट पड़ते—'जब बस इस लम्बे सफर के लिये दौड़ने लायक नहीं है तो उसे वर्क-शाप में भेजना चाहिये। इस तरह हम मुसाफिरों को परेशान करने से क्या लाभ?'

दूसरे ने जवाब दिया—'ट्रान्सपोर्ट वालों को पैसों से मतलब है या हमारी परेशानी से।'

तीसरा जो कुछ समझौता कराने के प्रयत्न में था, बोला—'अरे भाई, बस वाले क्या करें, ड्राइवर ही नया था।'

'तो हमने कहा था कि नया ड्राइवर इस बस में रखा जाय, जिसमें हम सफर कर रहे हैं?' पहले व्यक्ति ने चट जवाब दिया।

ड्राइवर और कन्डक्टर ने इस वादा-विवाद को सुना तो वहाँ से गायब हो गये। शायद कहीं छिप कर चाय पीने लगे थे। कुछ मुसाफिर सामान उतरवाने की जल्दी कर रहे थे। एक दुबला-

पतला लम्बा मैला-कुचैला लड़का बस की छत पर चढ़ कर जल्दी-जल्दी सामान पकड़वा रहा था। रिक्से वाले टिड्डी दल की तरह टूटे पड़ रहे थे। दो-चार 'हैपी-गो लकी' मुसाफिर इस हाय-हत्या में रस ले रहे थे। आपस में कुछ कह-सुन कर ठहाका मार कर हँस रहे थे। अगर मुसाफिरों में कुछ महिलायें होतीं तो लोग समझते कि वह ठहाका उन्हीं पर कसा जा रहा है; परन्तु भाग्यवश मुसाफिरों में कोई महिला न थी। विक्रम एक ओर खड़ा हो गया। जम कर अँगड़ाई ली, मुँह फाड़ कर जम्हाई ली। सिगरेट जला कर कश लेने लगा। मोहन और ईनिट को जैसे समुद्र पार छोड़ आया था। कुछ देर में वह घर पहुँचेगा—माँ देख कर अचम्भे में पड़ जायगी। नलू (छोटी बहन नलिनी को सब इसी नाम से बुलाते थे) स्वर्ग का सुख अनुभव करेगी, उसे लगेगा जैसे मैं उसके दुखों को हरने आया हूँ। चाचा-चाची मुँह देखी कहेंगे—'अरे कैसे आये ? अच्छे रहे ?' आदि कह कर फीकी हँसी हँस कर अपने काम में लग जायेंगे। अड़ोस-पड़ोस के बच्चे मेरे चारों ओर कूद-कूद कर 'भैया आये, भैया आये' चिल्लायेंगे। यह शोर सुन कर पड़ोस से पारो जीजी छज्जे से झाँक कर मेरा हाल-चाल पूछेंगी।'

जब-जब घर आता रहा हूँ, यही तो होता आया है। वही बार-बार होने पर भी प्रत्येक बार नवीनता झलकने लगती है। घर कुछ है ही ऐसी चीज। घर की याद के साथ पारो जीजी भी याद आ जाती है। पारो, चाची के पड़ोस में रह कर मुझको, मेरी माँ और नलू को कितना चाहती है। पारो के हल्के मोटापे पर सीधे पल्ले की धोती कैसी फबती हैं। उसके गोरे मुख पर रंगीन धोती का पल्ला, माथे पर बड़ी-सी टिकुली, दो-चार घुँघराली लटें बड़ी अच्छी लगती हैं।

'बाबू जी, यह है आपका सामान, ठीक है ना ?'—बस के नौकर ने विक्रम की विचार-शृंखला में विघ्न डाला।

'हाँ, ठीक है, अरे एक कुली को आवाज लगा'—विक्रम ने कहा।

'बाबू जी, घर दूर न हो तो मैं ले चलूँ सामान, मुझे आठ आने दे देना।' दयनीयता प्रकट करते हुए उस मैले-कुचैले बारह-चौदह वर्षीय बालक ने कहा। विक्रम ने उसे ऊपर से नीचे तक देखा, शायद इसको पैसे की आवश्यकता है, बिलकुल उसी तरह; जैसे मुझे। एक गरीब, दूसरे गरीब को दे ही क्या सकता है, परन्तु विधाता एक गरीब को ही दूसरे गरीब से माँगने को बाध्य करता है। शायद इसीलिये कि माँगने वाले को न मिले और देने वाले को न देने की पीड़ा हो। गरीबी में पीड़ा ही तो पलती है। प्रति पल हृष्टपुष्ट होती जाती है और अपनी आग में गरीब को तिल-तिल जलाती है, उसे चलती-फिरती मशाल बना देती है।

'सब सामान सिर पर लाद कर दस मिनट तक चलना पड़ेगा और दूँगा सिर्फ छै आने, क्योंकि मेरी जेब में यही छै आने बचे हैं।'—विक्रम को कहते हुए संकोच हुआ।

'अच्छा बाबू जी, मैं चलता हूँ' कहकर बिस्तरबंद, ट्रंक और एक टोकरी उठा कर विक्रम के पीछे चलने लगा। विक्रम के पैर अपने आप घर की ओर बढ़ने लगे। दो-चार पग चल कर उस ने सिगरेट का आखरी कश लिया और जमीन पर फेंक, पैर से उस टुकड़े को कुचल दिया। जिस नन्हीं-सी चिनगारी ने दो क्षण पहले इतना सुख दिया था उसे, उसी को बुझाने के लिये जैसे पूरे इन्सान का वज़न चाहिये था! कुचली हुई सिगरेट वहीं छोड़ कर विक्रम आगे बढ़ा। दो-चार ही कदम बाद उसकी नजर ऊपर उठी—शरद का धुला नंगा आकाश सिर पर फैला था। और उस पर कुछ तारे टिमटिमा रहे थे। देख कर विक्रम का मन अवसाद से भर गया। वह तेजी से चलने लगा, परन्तु यकायक वह ऊपर से नीचे तक काँप उठा। किसी ने उसके कंधे पर हाथ रख दिया

था। विक्रम पीछे मुड़ा और मुसकरा पड़ा........'अरे सुरेश! तुम हो।'

सुरेश ठहाका मार कर हँस पड़ा—'तुम तो ऐसे डरे जैसे मैं कोई भूत-प्रेत हूँ!'

अपने दोनों हाथ पैंट की जेवों में डाल कर विक्रम बोला—'नहीं यार, ऐसी बात तो नहीं है।' और वह आगे चल पड़ा।

सुरेश ने भी साथ दिया। बोला........'अबे यार, तुझे बेमौसम छुट्टी कैसे मिल गई? तुम्हारी वर्दी कहाँ है? तेरा वही बाबा आदम के जमाने का ट्रंक, होलडाल और टोकरी.......बात क्या है?' सुरेश विक्रम की ओर उत्तर की प्रतीक्षा में देखता रहा।

विक्रम लम्बी साँस लेकर रुखाई से बोला—'कुछ नहीं, चला आया ऐसे ही।'

सुरेश को विक्रम का यह रूखा उत्तर अच्छा न लगा। जिस विक्रम से वह स्कूल में खेलता-लड़ता बड़ा हुआ था, उसका रूखापन वह सह न सका। वैसे भी पिता के साथ पुस्तकों की दुकान में बैठ कर वह काफी रूखेपन का अनुभव कर रहा था। अब उसे अपने दोस्तों का भी रूखापन सहना पड़ेगा, इसकी कल्पना उसे न थी। दो-चार कदम चुपचाप चलने के बाद सुरेश ने भारी मन से कहा—'अच्छा तो मैं चला।' और बिना विक्रम के उत्तर की प्रतीक्षा किये ही वह चल पड़ा दूसरी ओर। सुरेश के मुड़ते ही विक्रम के मन में उथल-पुथल होने लगी—ये सम्पन्न लोग क्यों आते हैं मुझ विपन्न से मिलने। उसे नहीं है किसी से मिलने की इच्छा। नहीं है उनके साथ हँसने-बोलने की इच्छा। वह सब के लिये मर चुका है। वह अब केवल चलती-फिरती लाश है। वह अब किसी को कुछ दे नहीं सकता। दो मीठे बोल भी नहीं, हँसी भी नहीं, कुछ भी नहीं। तब उससे लोग यह सब क्यों चाहते हैं? उसे लोगों ने क्या दिया है जो वह लोगों को कुछ दे........। विक्रम का मस्तिष्क झुँझलाहट से भर गया

था, परन्तु उसके पैर आगे बढ़ते जा रहे थे, मन्त्र-मुग्ध की तरह........

'बचिये बाबूजी, बचिये।'

विक्रम सँभला ही था कि कार निकल गई। उसने पीछे देखा तो बस वाला लड़का जो सामान लादे चल रहा था, बोला—'बाबू जी, मैं कब से चिल्ला रहा था, पर आप कुछ सुन ही नहीं रहे थे। अभी आपकी जान बच गई, नहीं तो एक्सिडेन्ट हो जाता।'

'अरे भाई, हमारे मरने से दुनिया का कुछ बिगड़ता नहीं।' विक्रम ने लापरवाही दिखाई।'

'बाबूजी, दुनिया का तो बिगड़े या न बिगड़े; पर आप के बच्चों का सब कुछ बिगड़ जायेगा। मेरा बाप भी मोटर एक्सिडेन्ट से चल बसा और मुझे स्कूल छोड़ कर कुली बनना पड़ा।' लड़के का गला भर आया और वह चुप हो गया। विक्रम ने मुड़ कर लड़के को देखा और आगे चलने लगा। कुछ क्षण बाद पूछा....'अरे तेरी माँ नहीं है रे ?'

'नहीं बाबू जी, वो बुखार में तड़प-तड़प कर मर गई। किसी ने उसे नहीं बचाया। किसी ने उसे दवा नहीं दी। डाक्टर पैसा माँगते थे........मेरे पास पैसा नहीं था बाबूजी........मैं कुछ नहीं कर सका........मैं कुछ कर भी नहीं सकता था बाबूजी।'—लड़के ने डूबे हुए स्वर में कहा।

फिर चुप्पी फैल गयी। कुछ क्षण बाद विक्रम ने पूछा—'तेरे कोई भाई-बहन है क्या ?'

लड़के ने डूबे स्वर में जवाब दिया—'नहीं बाबूजी।'

'तो खाता पीता कहाँ है ?'

'बस वाले पैसे देते हैं, उससे जो मिला, खा लेता हूँ। जहाँ बस रुक जाती है, उस स्टैंड पर सो लेता हूँ.......बस। मेरा कोई नहीं है बाबूजी। मुझे आप अपने घर नौकर रख लीजिये। मैं

आप की, आप के बच्चों की सेवा-टहल करूँगा, बावूजी।'—लड़के के स्वर में आशा फूट पड़ी थी।

'तेरा नाम क्या है रे ?—विक्रम ने पूछा।

'मेरा नाम रामू है बावू जी।'

फिर दोनों चुप हो गये। विक्रम क्या उत्तर दे। वह इस उलझन में पड़ गया और रामू उत्तर की आशा में चुपचाप चलने लगा।

विक्रम जब घर पहुँचा तो घर में चाचा-चाची से मिलने कुछ मेहमान आये थे। नलू मैली-कुचैली फटी धोती पहने रसोई में मशीन सरीखी काम कर रही थी। वहीं एक कोने में माँ फटी दरी पर बुखार में तड़प रही थी। विक्रम को देखकर नलू के मुख पर प्रसन्नता की रेखा दौड़ गयी, पास आकर बोली—'भैया, जल्दी से नहा लो, मैं तुम्हारे लिये चाय बनाती हूँ।' और जल्दी से रसोई में घुस गयी। अगर चाची देख लेतीं तो रसोई से निकलने के कारण उसे फिर से नहाना पड़ता और कनौजी रीति-रिवाज पर एक लम्बा-चौड़ा भाषण सुनना पड़ता।

विक्रम जब नहा-धोकर निकला तो मेहमानों की हा-हा-ही-ही चल रही थी। वह चुपचाप माँ के पास बिछी दरी पर बैठ गया। नलू एक हाथ में चाय का गिलास और दूसरे हाथ में मठरियों की तश्तरी लेकर विक्रम के सामने आयी। गिलास रखकर तश्तरी रखती हुई झिझक रही थी। उसे मालूम था कि विक्रम को मठरियाँ पसन्द नहीं हैं। मुसकरा कर बोली—'भैया, मठरी नहीं चाहिये तो पकौड़ी उतार दूँ ?'

नलू के हाथ से तश्तरी लेते हुए विक्रम ने उत्तर दिया—'नहीं, नहीं, मठरियाँ ठीक हैं।'

नलू चौके में लौट गयी और पूछने लगी 'भैया तुम्हारे लिये आज आलू के पराठे बना दूँ ? तुम्हें पसन्द है ना ?'

माँ बीच में टोककर बोली—'पूछती क्या है, बना दे न। क्यों रे विक्रम खायगा न ?'

'नहीं माँ, जो सबके लिये बन रहा है, वही मैं भी खाऊँगा। नलू फिर कभी बना देना आलू के पराठे, आज नहीं।'

सब चुप हो गये। विक्रम मठरी तोड़ने लगा, यह नलू अभी तक आज से साढ़े तीन साल पुरानी बात आँचल में बाँधे बैठी है—पकौड़ी अच्छी लगती है, आलू के पराठे बना दूँ। उसको यह नहीं मालूम कि अब उसका भैया कुछ भी खाकर जी सकता है, अब उसके लिये पकौड़ियों और बासी रोटियों में कोई अन्तर नहीं है। उसे क्या मालूम कि वह पुराना विक्रम मर गया है। उसके स्थान पर अब विक्रम का चलता-फिरता शव रह गया है। विक्रम विचारों में डूबा कभी चाय पीता, कभी मठरी खाता। चुप्पी तोड़ते हुए माँ बोली—'क्यों रे, तू बिना कुछ बताये कैसे चला आया?'

विक्रम चुप रहा। मठरी तोड़-तोड़ कर खाता रहा। माँ के मन में कुछ शंका जगी। वह लेटी थी, उठकर बैठ गई। बोली—'तू फौज से नाम कटा कर तो नहीं आया है न?'

एक लम्बी साँस छोड़कर विक्रम बोला, 'माँ मेरी नौकरी छूट गई!'

माँ का मन मसोस उठा। आँखें भर आईं। विक्रम ने चाय का अन्तिम घूँट निगल कर आँसू पोंछती हुई माँ को देखा। उससे न रहा गया, बोला—'माँ, तुम्हारे रोने से, खून जलाने से, हमारी तकदीर तो नहीं पलटेगी। क्यों तुम अपने आपको इतना दुखी करती हो?'

आँसू पोंछती हुई माँ ने भरे गले से उत्तर दिया, 'किसी की तकदीर खराब हो तो क्या वह आशा करना छोड़ देता है? मैंने आशा की थी कि तू अच्छी नौकरी करता रहेगा, फिर हम वहीं जाकर अलग छोटा-सा घर लेकर आराम से रहेंगे और....।' माँ से और कुछ कहा नहीं गया, गला भर आया। रसोई में बैठी नलू ने बातें सुनीं तो भैया को देखने के बाद जो प्रसन्नता उसके अंग-अंग से फूटी पड़ रही थी, वह कहीं लुप्त हो गई। वह गम्भीर हो गई। विक्रम का दम घुटने लगा. वह कुछ क्षण चुप रहा

फिर आँसू पोंछती हुई माँ से उसने कहा—'माँ, जो होता जा रहा है, सहती चली जाओ, बस।'

'अब सहने को क्या बाकी रह गया है बेटा....अब....'—बिना वाक्य पूरा किये माँ सिसक-सिसक कर रोने लगी।

उसने चुपचाप दरी उठाई और छत पर जा कर लेट गया। कानों में बस की भरर-भरर अभी तक गूँज रही थी। सामने चतुर्दशी का खूबसूरत चाँद चमक रहा था। विक्रम का हृदय झरती हुई चाँदनी की झील के फूलों में तड़प रहा था। दूर नर्मदा की कछार की कँटीली झाड़ियों के ऊपर से उड़ती हुई हवा में विक्रम का ढीला कुरता उड़ रहा था। फिर टन-टन कुछ दूर किसी मंदिर की घंटियाँ बजने लगीं, शायद आरती की बेला थी। स्वर, मंदिर से उड़-उड़कर आसमान की ओर जा रहे थे।

आसमान में मंदिर के प्रार्थना-स्वर फैलकर फीके हो रहे थे। जब तक यह स्वर भगवान के महल में पहुँचेंगे, वह बिलकुल ही फीके हो जायेंगे। जब भक्तों के स्वर भगवान के महल तक नहीं पहुँच सकते तो क्यों करते हैं लोग पूजा-अर्चा? अपना मन, अपनी भक्ति क्यों लोग भगवान की मूर्ति के सामने उँडेलते हैं? माँ ने जीवन भर रो-रोकर, तड़प-तड़पकर, भगवान की भक्ति की, पर क्या हो गया उससे...? हाँ, दिन पर दिन दुख बढ़ता गया और आज दुःख असह्य हो गया है; परन्तु....।

'भैया, पान लो। आज तो तुम पान माँगना भी भूल गये। पहले तो हल्ला मचा देते थे, अगर पान समय पर नहीं देती तो।'

विक्रम लेटे ही लेटे नलू से पान लेकर खाने लगा। नलू उत्तर की प्रतीक्षा में खड़ी रही। आसमान के खूबसूरत चाँद पर आँख गड़ाये विक्रम ने पूछा—'नलू, तू अपनी शादी से खुश है?'

'...........' नलू चुप थी, क्या उत्तर दे?

चाँद से दृष्टि हटाकर नलू पर जमाते हुए विक्रम ने अपना प्रश्न दोहराया। नलू बैठ गई और संकोच से अपने पैर के अँगूठे को

देखती हुई बोली—'अगर माँ खुश हैं, तुम खुश हो, तो मुझको भी खुश होना पड़ेगा।'

विक्रम ने कहा—'क्या शादी के समय लड़कियों के अपने विचार नहीं होते ?'

विक्रम के इस प्रश्न में कुछ रोष था। नलू ने अपने भैया की ओर देखा। वह अपने अन्दर इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ने लगी; पर उसे कोई उत्तर न मिला। तब तक विक्रम ने कहा—'हाँ, हाँ, बोलो, मुझसे क्यों झिझकती हैं ?'

'बिना वाक्य गढ़े, नलू के मुख से निकल पड़ा—'भैया घर वालों की दया-माया में पलने वाली लड़कियाँ कहाँ से स्वतन्त्र विचार पाल सकती हैं ? सच भैया, मुझको मालूम नहीं कि मैं खुश हूँ या दुःखी ? अगर तुम कहोगे कि यह खुशी का मौका है, तो मैं खुश हो जाऊँगी।'

विक्रम कुछ बोलना ही चाह रहा था कि नलू को दौड़कर नीचे जाना पड़ा।

चाची ने आवाज लगाई थी।

विक्रम ने आँख बन्द कर लीं और....वह विचारों की बाढ़ में तिनके के सामान डूबने-उतराने लगा।

—यह नलू भी कैसी है, अपना सुख-दुख भी नहीं समझ सकती ? 'अगर तुम खुश हो तो मुझको भी खुश होना पड़ेगा।' हूँ। इतनी श्रद्धा भी किस काम की, उसे कुछ अपना भी सोचना-समझना चाहिये। उसके विवाह की बात सुनकर मैं तो पागल हो उठा। नौकरी ढूँढ़ना छोड़कर यहाँ चला आया और उसे पता ही नहीं कि उसे खुश होना चाहिये या दुखी। वाह री नारी ! नलू जैसी इस जगत में और भी नारियाँ होंगी, जो गरीब गाय की तरह जीवन भर सेवा करेंगी। अपने सुख-दुख पर विचार करने की भी कोशिश नहीं करेंगी ? इसी प्रकार की नारियों से ही तो लाभ उठाया जाता है। धकेल देते हैं कहीं भी, और वह बिना उफ किये

चली जाती हैं मूक गाय की तरह। नलू को, चाचा-चाची धकेल रहे हैं और नलू चली जायेगी। अभी तक चाचा-चाची ने हमारा भला नहीं किया तो नलू की शादी में भी भलाई नहीं हो सकती। उनका अवश्य कुछ मतलब पूरा हो रहा है नलू को झोंकने में। माँ ने चाचा-चाची की किसी बात का भी समर्थन नहीं किया तो अब नलू की शादी में हामी क्यों भरी है। माँ ने कुछ कम दुख सहे हैं जो मरते दम तक वह अपनी इकलौती बेटी के आँसू देखती रहे? क्या इसी प्रकार के जीवन जीने के लिये माँ ने जन्म भर दुख सहे हैं, जीवन के प्रति पल को आँसुओं से नहलाया है? मन ही मन माँ और नलू को मालूम है कि उन पर अत्याचार किया जा रहा है। बिना किसी गुनाह के उन्हें पीसा जा रहा है। जीवन भर रुलाने के षड़यन्त्र रचे जा रहे हैं....परन्तु दोनों चुप हैं....।

फिर विक्रम की आँखों के सामने आँसू पोंछती हुई माँ का चेहरा घूम गया, फिर नलू का गम्भीर, उदास चेहरा घूम गया। उसने आँखें खोलीं। आकाश में हल्दिया चाँद अपनी चाँदनी बरसा रहा था। सारा आकाश, सारा वायुमंडल चाँदनी से भर गया था, मधुर स्वच्छ चाँदनी। छोटे-छोटे तारे कहीं भाग कर छिप गये थे। विक्रम करवट बदल कर सोने का प्रयत्न करने लगा। उसके सिर में तीव्र पीड़ा हो रही थी।

चाची को जब पता चला कि विक्रम बिना उससे मिले छत पर जाकर सो गया है, तो उसके अहम् को धक्का लगा। आखिर उसका घर सराय तो नहीं है कि जो चाहे आ जाये और अपने बाप का घर समझ कर सोने चला जाय। चाची से न रहा गया, जलती-भुनती पति के पास गयी और हाथ मटका कर बोली—'अजी कुछ सुनते हो कि कान में रूई ठूँसे बैठे हो!'

'हाँ, हाँ, क्या हो गया, कुछ कहो भी।'

'विक्रम आ गया है। तुमसे बिना मिले नहा-धोकर सो गया।'

'अरे तो मुझसे कैसे मिलता ? कई मेहमान बैठे थे न।'

'तो क्या मेहमान उसे खा जाते। हमारा खाते हैं, हमारे घर रहते हैं, पर हमसे मिला नहीं जाता। ऐसी ऐंठ दिखाते हैं, मानों बाप-दादा धन-दौलत गाड़कर छोड़ गये हैं।'

'अरे तो इसमें इतना बिगड़ने की क्या बात है !'

'बिगडूँ नहीं तो पूजा करूँ उसकी ? जो भी कुछ हो, अब विक्रम को साफ-साफ कह दो कि अपनी माँ-बहन को यहाँ से ले जाय। अब मैं उनको एक क्षण भी अपने यहाँ नहीं रखना चाहती। बहुत कर दिया है मैंने उनके लिये।

'दस-बारह दिन बाद नलू की शादी है और आज तुम उन्हें निकाल दोगी ? विक्रम बच्चा है, वो क्या कर पायेगा ?'

'कुछ कर पाये या नहीं। लगन तक मैंने बहुत कुछ कर लिया। अब शादी का काम उसके जिम्मे।'

'और अगर वह इस शादी से राजी नहीं हुआ तो ?'

'राजी कैसे नहीं होगा। लड़की का लगन बार-बार चढ़ता है क्या ? लगन चढ़ गया। दूल्हा वाले नलू को देख गये। गहना-कपड़ा पहना गये।'

'विक्रम बड़ा जिद्दी है। मेरा कहा मानो तो नलू की शादी के बाद विक्रम को अलग करना, नहीं तो तुम्हारा किया-कराया काम चौपट हो जायेगा। आगे जैसी तुम्हारी मर्जी। जो ठीक समझो, कर लो। मेरी काहे को जान खाती हो।'

'तुम्हारी जान खायें तुम्हारे दुश्मन। भला मैं क्यों तुम्हारी जान खाऊँगी।'—रुआँसी होकर चाची बोलीं।

'बस, बस, तुम्हें रुलाने के लिये मैंने थोड़े ही कहा था। जो तुम करोगी, मुझे मंजूर है। अब तो खुश हो। हाँ, तो जरा हँस दो। हाँ ऐसे।... अच्छा अब कुछ खाना खिलाओगी या भूखा सुलाओगी।'

मुसकरा कर चाची खाना लाने गयीं।

× × ×

'अरे पारो बेटी !'

'आओ बुआ जी, बड़े दिन बाद रास्ता भूली हो। कहो कैसे आना हुआ ?'

'आज पूर्णिमा है, सत्यनारायण करा रही हो क्या ?'

बुआ जी ने चादर उतार कर खूँटी पर टाँग दी और पटरा लेकर पारो के चौके के सामने बैठ गयीं।

'अरे नहीं री। मैं तेरी पड़ोसिन के हालचाल पूछने आई हूँ।'

'कौन, नलू की चाची के हालचाल ? उसकी इतनी चिन्ता कैसे पड़ गयी है तुम्हें ?'

'अरे कल मिसरानी ने मुझे बताया कि नलू की शादी पीपल वाली गली के पंडित जी से होने वाली है। यह सुनकर मैं सन्न रह गयी। पंडित जी के तो पाँच बच्चे हैं !'

'हाँ बुआ जी, चाची नलू के साथ बहुत बुरा कर रही हैं और यह सब काम इस कदर चटपट हो रहा है कि भेद समझ में नहीं आता।'

'भेद तो मुझे मालूम है पारो; इसीलिये तो दौड़ी आई। पंडित जी के घर की मिसरानी, मेरी मिसरानी की ननद है। उनके घर की एक-एक बात मुझसे पूछ लो।'

उत्सुकता से पारो ने तवा नीचे उतार कर आटे की परात पर कपड़ा ढँक दिया और बोली—'हाँ, तो बुआ, बताओ न क्या बात है ? नलू का रोना तो मुझसे देखा नहीं जाता। बेचारी छिप-छिपकर रोती है। मेरी सगी बहन होती तो इस शादी के बदले जहर खिलाकर सुला देती उसे।'

'आज को मेरा चंदू मान जाता तो नलू को हाथों-हाथ उठा लेती।'

'तो चंद्र भैया मानते क्यों नहीं। नलू जैसी सुशील और सुन्दर लड़की नहीं मिलेगी उसे।'

'वह जानवर कहता है कि 'लव' शादी करेगा। पहले लड़की को प्यार करेगा, फिर शादी करेगा। देख ले कलयुगी पूतों के

लच्छन। मेरा बेटा है, नहीं तो झाड़ू मारकर घर से अलग कर देती। पर पेट के टुकड़े से क्या कहूँ ? बस कुढ़कर बैठ जाती हूँ।'

'हाँ, तो बुआ जी बताया नहीं; नलू की शादी में क्या भेद है।'

'अरे पीपल वाली गली के पंडित जी को तू जानती ही है।'

'हाँ, हाँ, क्यों नहीं। मरा घूर-घूर कर लुगाइयों को देखा करता है।'

'पाँच बच्चों का बाप है, फिर भी मेहतरानी पर नीयत लगाये बैठा है। बस मिसरानी से डरता है।'

'मैंने सुना था कि वो कोठों के भी चक्कर लगाता है।'

'अरे राम-राम ? कैसा नीच आदमी है!'

'यह तो मैं भी कहूँगी।'

'पर बेचारी नलू कैसे उसके जाल में पड़ी ?'

'अरे तुझे मालूम नहीं, नलू के चाचा ने पंडित जी से कुछ कर्ज लिया था।'

'हाँ...हाँ, नलू के पिता की मृत्यु के बाद इनको कुछ घाटा पड़ा था।'

'काफी कर्ज चुका दिया था; पर पाँच हजार सूद के रह गये। एक दिन नलू के चाचा सूद की माफी के लिये पंडित जी के यहाँ गये तो पता है, पंडित जी ने क्या कहा ?'

'क्या कहा ?'

'वो नीच बोला, अगर तेरी नलू मेरे साथ पांच रात रहे तो पाँच हजार माफ और ठहाका मारकर हँसा। नलू का चाचा अपमान का घूँट पीकर सिर लटका कर वापस आ गया। शायद उन्होंने यह बात नलू की चाची से कही, और उस डायन ने सुझा दिया कि पाँच रात ही क्यों, सदा के लिये नलू तुम्हें दे देंगे। दूसरे दिन ही चाचा ने जाकर नलू की शादी तय की और साथ में शादी का खर्च भी ले आये। उसी शाम पंडितजी घर आकर नलू को देख गये और गहने-कपड़े पहना गये।'

'चुड़ैल ने पंडित जी से शादी का खर्च ले लिया और मुहल्ले भर में फैला रही है कि वो अपनी ओर से खर्च उठा रही है। हाथ फैला-फैलाकर अपने किये की सफाई दे रही है कलमुँही कहीं की।'

'नलू की माँ कुछ बोलती क्यों नहीं ?'

'वो क्या बोलेगी बेचारी। अपने बच्चों के लिये दुख के पहाड़ों में दब-दबकर बेचारी हड्डियों का ढांचा रह गयी है और नलू की शादी की बात सुनकर तो खाट से लग गयी। बहुत तरस आता है मुझे।'

'क्या बुखार चढ़ गया है उसे ?'

'बुखार है, खाँसी है और दिन भर आँसू पोंछती है बेचारी। ऐसा लगता है, जैसे माँ-बेटी किसी का मातम मना रही हैं। बुआ जी, क्या यह शादी रुक नहीं सकती ?'

'अब क्या हो सकता है ? लगन चढ़ चुका है। और अब कहीं शादी रुक गयी तो हमारी बिरादरी में नलू को दूल्हा ही नहीं मिलेगा। सब कहेंगे कि लड़की में ही कोई ऐब है, जो शादी रुक गयी।'

'हाँ, बात तो ठीक कहती हो, बुआ जी।'

'दूसरे यह कि नलू अब बीस साल की हो गयी है, उसे कब तक घर में बैठाये रख सकते हैं ! हाथ तो पीले करने ही पड़ेंगे।'

'बेचारी नलू की जिन्दगी चौपट हो जायेगी। मैं तो अब भी यही कहूँगी कि अगर यह शादी रुक जाय तो अच्छा होगा।'

'ऐसी बात मुँह से मत निकाल। लड़की का लगन एक बार चढ़ता है पगली। यह कोई गुड्डे-गुड्डियों का खेल है क्या !'

'मेरा मन नहीं मानता बुआ जी।'

'तो मेरा मन कब मानता है ?'

जब किसी बात की अति हो जाती है, तो बुद्धि साथ नहीं देती। पीपल वाली गली के पंडित जी की बुद्धि ने उसका साथ छोड़ दिया। इस उमर में आकर नारी-आसक्ति की अति हो

गई। उसे नारी चाहिये; नित्य नई नारी। कली-सी अधखिली नारी। इस मनोवृत्ति से वह मनुष्यत्व से नीचे गिरता जा रहा है, बहुत नीचे।

नलू की दर्दनाक कहानी दीक्षित पुरा के भावुक लोगों के मन में सिहरन पैदा कर रही थी। दूध वाले की दूकान पर, लकड़ी की टाल पर, नल पर, नर-नारी मुक्त कंठ से नलू की चाची को कोस रहे थे। नलू क्या हुई, घर-घर की बेटी हो गयी। सब हाय-हाय कर रहे थे। यहाँ तक कि कल्लू मोची, चन्दर पानवाला और रमई कलई वाले को भी बुरा लग रहा था। विक्रम बेसुध है। तड़के घर से निकलता है, कुछ रात बीते घर लौटता है। जबलपुर का चप्पा-चप्पा नाप रहा है, कहीं तो नौकरी मिलेगी। एम्पलायमेन्ट एक्सचेन्ज में नाम लिखा आया है। सुना है, सरकारी दफ्तरों में एक्स सर्विस मैन के लिये स्थान सुरक्षित है।

विक्रम जहाँ जाता है, वहीं एक दरखास्त दे आता है। जबलपुर के प्रत्येक स्कूल, सरकारी, ग़ैर सरकारी दफ्तरों में, सेठों की पेड़ियों पर चक्कर लगाकर चप्पल घिसा दी। निरंतर चलने-फिरने से गोल बाजार, गंजीपुरा, बड़ा बाजार, सुनराई आदि मुहल्लों की धूल भी शायद उसकी पदचाप पहचानने लगी थी। मोचियों ने तो चप्पलों को पेंशन देने की माँग की, परन्तु विक्रम निरंतर घूमता रहता, सुबह से शाम तक। वह कोई भी नौकरी करने को तैयार था—क्लर्की, ट्यूशन, मैनेजरी, पी० टी० मास्टर, बस वह केवल ढ़ेड सौ रुपया चाहता था; जिससे वह अलग मकान लेकर माँ-बहन को पाल सके। स्कूल वाले टीचिंग एक्सपीरियेन्स पूछते थे। व्यापारी अच्छे सेल्स मैन का अनुभव चाहते थे। लड़कियों की ट्यूशन में सफेद बाल वालों की आवश्यकता थी। जिन-जिन बातों की कमी विक्रम में थी, लोग उन्हीं बातों की पूछताछ करके नाहीं भरते थे।

'तुम्हारे लिये यहाँ नौकरी नहीं है।'—सुन-सुनकर विक्रम के

कान पक गये थे। उसको लगा, जैसे नौकरी ढूँढ़ना तो उसके लिये रेगिस्तान में मृगजल के पीछे भागना है। सुबह आशा लेकर वह घर से निकलता था; पर शाम को निराश-हताश घर लौटता था। परिणाम यह हुआ कि कुछ ही दिनों में वह स्वप्नछिन्न और जीवन के प्रति अविश्वासी हो गया। जब वह दिल्ली से चला था, तो एक छोटा-सा प्यारा-सा स्वप्न लेकर चला था, कि वह नौकरी करेगा, अलग घर लेकर माँ-बहन को कम-से-कम रूखी रोटी खिला सकेगा। परन्तु जब चप्पल चटकाते दिन निकलते जा रहे थे, 'नौकरी नहीं है' सुनते-सुनते कान पकते जा रहे थे, तो उसे अपने चारों ओर निराशा दीखने लगी, वह अपनी मुट्ठी से अपनी तकदीर कूट देना चाहता था। वह गोल बाजार के पार्क में बैठकर घंटों शून्य की ओर देखता रहता। उसका रंग काला पड़ गया था। आँखों के नीचे कालिमा छा गई थी। घुंघराले बाल अस्त-व्यस्त पड़े रहते।

माँ ने देखा, विक्रम का मुँह उतर गया है। रंग गहरा हो गया है। कम बोलता है। मन-ही-मन घुलता रहता है।

'जय हो सत्यनारायण जी की, विक्रम को नौकरी दिला दे। पूनो की पूजा कराऊँगी, अब सुनाई करले भगवान! सहा नहीं जाता। मेरी जिन्दगी भर सुनाई नहीं की, अब मेरे बच्चों के लिये सुन ले, नहीं तो उठा ले इन दोनों को। मेरे फूल-से बच्चे समाज की वेदी पर बलि हो रहे हैं। सत्यदेव! मेरे प्रभु! कुछ कर दे।'—माँ बेचारी रात-दिन सत्यनारायण की प्रार्थना करती।

एक-एक मन के बोझ-सा, एक-एक मिनट कटता! माँ की आँखें आँसू गिरा-गिराकर सूख गयीं। अब आँसू से आँचल नहीं भींगता, परन्तु मन की हाय शायद विष्णु भगवान के शेषनाग को डुला दे।

वह भी समय था, जब विक्रम के पिता खूब कमाते थे। घर भरा-पूरा था। किसी चीज की कमी नहीं थी। विक्रम की माँ

ऊपर से नीचे तक सोने से लदी थी। जब विक्रम पहली कक्षा में पढ़ता था, तब उसके पिता के चाचा-चाची चल बसे। विक्रम के पिता ने अपने चाचा के एक मात्र पुत्र शंकर को अपने पास रखा। पढ़ाया-लिखाया, धूम-धाम से शादी की। और आज वह भी दिन है कि भाई के एहसानों के वदले में भाई की इकलौती बेटी को वह जान बूझकर कुएँ में ढकेल रहा है। विक्रम के पिता की मृत्यु के बाद इसी शंकर ने सारे कागज-पत्र गायब कर दिये। बैंक के पैसे, गहने-कपड़े सब हजम कर लिये। और उसी घर में विक्रम की माँ-बहन को नौकरानी बना छोड़ा है।

ये सब बातें दीक्षितपुरा में किसको नहीं मालूम। रमई कलई-वाले ने तो विक्रम की माँ के दहेज़ में चढ़े बरतनों को सबसे पहले कलई लगाई थी। कैसे बड़े-बड़े बर्तन थे और कितने सारे थे बर्तन। तीन रोज तक कलई लगाता रहा—उसको खूब याद है, उसे शादी के लड्डू-कचौड़ियाँ भी दोने भर-भर कर मिले थे तीन दिनों तक। बरतनों को देखकर ही रमई कलई वाले ने भाँप लिया था कि वहू बड़े अमीर घर की लड़की है।

....और चन्दर पानवाला ? वह तो विक्रम के पिता को तब से जानता था, जब वह गुल्ली डंडा खेलता था। जब विक्रम के पिता बड़े हुए तो उन्हें चन्दर पानवाले को छोड़कर किसी दूसरे के लगाये पान नहीं भाते थे। दीक्षितपुरा के एक-एक आदमी से आत्मीयता थी, विक्रम के पिता की। और उसी दीक्षितपुरे में विक्रम की, उसकी माँ-बहन की दुर्गति हो रही थी।

....विक्रम हर मास दिल्ली से पैसे भेजता। नलू को लेकर विक्रम की माँ अलग रहने लगी। कुछ शान्ति मिलने लगी। नलू ने अपनी पढ़ाई आरम्भ कर दी और एफ० ए० पास कर गई। जब चाची को नलू की प्रगति का अहसास हुआ, तो वह गली-मोहल्ले में नलू और नलू की माँ के चरित्र पर लांछन लगाने लगी। उसका कहना था कि माँ-बेटी अलग रहकर बुरा

काम करती हैं। अगर अच्छे चरित्र की हैं तो हमारे घर क्यों नहीं रहतीं। आखिर यह घर नलू के पिता के समय से है। नलू की पढ़ाई क्या घर में नहीं हो सकती? क्या बिना किसी मर्द के इन दोनों का अलग रहना शोभा देता है। सुन-सुनकर नलू की माँ हार गई और वह फिर अपने घर में रहने आई। फिर क्या था। चाची ने उन दोनों को घर के काम में ऐसा फाँसा कि न तो नलू की पढ़ाई हो सकी और न ही नलू की माँ को चैन से बैठने को मिला। परन्तु जब मिलने-जुलने वाली आतीं तो उनके सामने विक्रम की माँ को ताना देना न भूलती।

× × ×

नलू की शादी के ढोल बजने लगे। किराये पर आयी गाने वाली गा रही थी....

सुरही गाई का गुब्र मँगाओं
कुछ घर वेंदिया लिपाओ
गज मोती चौक पुराओ,
सोना कलस धराओ,
ले बैठो नलू रामा बेटी मेरे से हो संकर
ले बैठो विक्रम रामा बहनी। मोती माँग भराओ।....

'....अरी सुन रही है पारो। नलू के तेल-हल्दी चढ़ने वाली है। कुछ देर में लड़की पराई हो जायेगी।' पड़ोस से उदय की माँ बोली।

'अरे काहे शोर मचा रही हो। मैं कुछ भी नहीं सुनना चाहती।'

'क्या सहोगले के नेवते में नहीं जाओगी? चाची ने तो तुम्हें बुलाया है।'

'जल्दी चलो।'

पारो कुछ नहीं बोली। चुपचाप काम करती गयी। उदय की माँ भी छज्जे पर सब्जी जलने की बू पा रसोई में भाग गयीं।

कनौजी रीति के अनुसार शादी के पाँच-दिन पहले सात सहोगले नेवते जाते हैं। धोबिन भी नेवती जाती है। फिर ये सब सुहागिने बधू कन्या को सुहाग देती है कि जिस प्रकार हम सुहागिन हैं, हमारी गोद बच्चों से भरी है, उसी प्रकार नई बधू तू भी रहे। धोबिन शादी वाले दिन अपनी माँग में सिंदूर भरती है। बधू-कन्या को और अपने आपको अपने आँचल से ढँककर अपनी माँग से सिंदूर निकाल कर बधू-कन्या की माँग भरती है। धोबिन का सुहाग देना बड़ा महत्वपूर्ण है। धोबिन जिसको सुहाग देती है, वह कभी विधवा नहीं हो सकती, ऐसा विश्वास किया जाता है। चम्पा धोबिन को भी नलू के साथ यही करना पड़ेगा। और यह सब होगा एक बीस वर्ष की कन्या को पचपन वर्षीय दूल्हा जू की मेहरिया बनाने के लिये।

गरीब घर की लड़की चाहे कितनी ही सुशील हो, सुन्दर हो, पढ़ी लिखी हो, घर के काम में निपुण हो, उसे कुआँरा पति कहाँ से मिल सकता है। कुआँरा पति पाने के लिये सोना खर्चना पड़ता है, सोना ! भाग्य हो तो कुआँरा पति मिले, फूटे भाग वाली कुआँरियों को दुहाजू से अच्छा वर और क्या मिल सकता है ? दुहाजू के साथ विवाह भी सस्ते में निबट जाता है और सबसे बड़ी बात, दूल्हे के सामने नाक नहीं रगड़नी पड़ती। बाप-भाई को पगड़ियाँ उतार कर समधी के पैरों पर नहीं रखनी पड़ती हैं। विवाह की रस्में पूरी करने में लड़के वालों की ओर से उठायी अड़चनें आड़े नहीं आतीं। शादी खुशी-खुशी पूरी हो जाती है। और कहीं पीपल वाली गली के पंडित जी जैसा दूल्हा मिल जाय, तब तो खर्च भी नहीं देना पड़ता। तब बेचारे कनौजी अपनी फूल-सी मासूम बेटियों को दुहाजू से ब्याह देने में ही अपनी भलाई समझते हैं तो क्या बुरा करते हैं ? कुआँरे लड़के तो अमीर घर की कुरूप और अनपढ़ी लड़कियों के लिये रिजर्व रहते हैं।

जब चाची चम्पा धोबिन को नेवता देने गयी तो उसने शादी

में सुहाग देना मनाकर दिया। वह तो शादी से सहमत नहीं है। काहे को दे वह जबरदस्ती सुहाग नहीं देगी। उसे वह दिन अच्छी तरह याद है जब पीपल वाली गली के पंडित ने उसकी इज्जत पर हमला किया था। वह तो खैर हुई कि वह जान बचाकर भाग निकली। ऐसे कुत्ते के लिये वह नलू को सुहाग दे....? नहीं देगी वह। चाची ने चम्पा को बढ़िया लहँगा-ओढ़नी देने का वादा किया, पर वह नहीं डिगी। चम्पा धोबिन की मर्जी, नहीं लेती घूस। पैसा सरल शुद्ध विचार वालों की मर्जी को नहीं खरीद सकता। चाची चम्पा धोबिन के चक्कर लगा-लगाकर थक गई। घूस का लालच कुछ काम नहीं कर रहा था। यह बात दीक्षित-पुरा में आग की तरह फैल गई। एक छोटी जात की औरत का यह व्यवहार! मन नहीं मानता तो काम भी नहीं करेगी। पारो ने सुना तो उसका मन उसे दुतकारने लगा। एक वो थी कि नहीं चाहती हुई भी चाची को साफ-साफ कुछ न कह सकी। सहोगले का नेवता स्वीकार कर लिया। अन्दर से मन नहीं-नहीं करेगा और ऊपर से रख-रखाव के कारण जबरदस्ती हाथ उठाकर नलू को सुहाग देगी। लानत फेंको इस ऊँची जाति के रख-रखाव को। मन गवाही नहीं देता तो काम भी नहीं करना चाहिये। जब चम्पा धोबिन इतना बड़ा निर्णय सहज भाव से कर सकती है, तो वह क्यों पीछे हटे? पारो ने ठान लिया कि वह सहोगले के नेवते में नहीं जायेगी। चाची को बुरा लगे तो लगा करे। मैं दिखावा नहीं करूँगी। मुझे दिखावे से सदा चिढ़ रही है, तो आज क्यों करूँ। अभी तो मेरी गोद में कोई लड़की भी नहीं है। क्यों डरूँ मैं जात बिरादरी से? विचार उठते ही उसने चटपट काम समेटना शुरू किया। वह अपना निर्णय कुन्ती भाभी को सुनाना चाह रही थी।

कुन्ती भाभी दीक्षितपुरा में ही एक सिरे पर रहती थी। कुन्ती पारो की सगी भाभी न थी; परन्तु कुन्ती के पति को पारो

बचपन से राखी बाँधती आई है। कुन्ती का पति और पारो का भाई साथ-साथ स्कूल-कालेज में पढ़ते थे। कुन्ती के पति के कोई सगी बहन थी नहीं, अतः पारो उस रिक्त स्थान को पूरा करती रही। कुन्ती और पारो में खूब पटती थी। छोटी से छोटी बात जब तक वे एक दूसरे को बता नहीं देतीं; उनका खाना हजम नहीं होता था। परन्तु कुन्ती के पति के सामने दोनों के बोलने का ढंग बदल जाता था....मजाक में एक दूसरे को खूब चोंच मारती थीं। नंनद-भौजाई का नाटक पूरे क्लाइमेक्स पर उतरता था।

'अरे ओ कुन्ती भाभी। सुन रही है या नहीं।'

'काहे गला फाड़ रही है, चली आ न अन्दर मैं भी सोच रही थी आठ दिन से अपने भाई की खैर खबर पूछने कैसे नहीं आई।'

'यही फिक्र तो मुझे खाये जा रही है। पता नहीं, मेरे भैया को कुछ खिलाती भी है या नहीं। खुद तो हलवा पूरी खाकर मोटी होती जा रही है।'

'कल तुम्हारे भैया तुम्हें याद कर रहे थे।'

'तब तो तू जलकर खाक हो गयी होगी।'

'देख न, जलकर कैसी काली पड़ गयी मैं।' पारो जोर से हँसी।

कुन्ती बोलती गयी....'हाँ, पहले बता तो कैसे आई है? चादर उतार कर बैठ न।'

'देखा भाभी, मुझे नलू की शादी में सहोगले के नेवते में बुलाया है। नलू की चाची मुझसे सीधे मुँह कभी नहीं बोलती; पर खुद मुझे नेवता देने आई थी।'

'मुझें भी तो नेवता दे गयी है।'

'पर एक बात है भाभी। मैं नहीं जा रही हूँ सहोगले न्योतने। मेरा दिल नहीं मानता।'

'पागल हो गयी है क्या। भोली-भाली नलू क्या सुहागन न बने? बहुत दुख देखा है बेचारी ने। शादी के बाद तो सुख देख लेगी।'

'खाक सुख देखेगी। पीपल वाली गली के पंडित को नहीं जानती क्या ? मुआ क्या सुख देगा नलू को।'

'फिर भी हमारी बिरादरी में नलू जैसी गरीब को कोई नयी उमर का दुल्हा थोड़े ही मिलेगा ?'

'तो यह भी मतलब नहीं कि ऐसे के साथ शादी कर दी जाय जो पाँच-दस साल में चल बसे। उसे अपने बच्चों की शादी करवानी चाहिये या अपनी ?

'बात तो तू ठीक कहती है। पर हम कर ही क्या सकती हैं ?'

'क्यों नहीं कर सकतीं ? चम्पा धोबिन ने तो साफ इन्कार कर दिया। मैं कहे देती हूँ, तुम्हें अच्छा लगे या बुरा, मैं नहीं जाने की।'

'जब चम्पा धोबिन नहीं जा रही है, तू नहीं जा रही है, तो मैं क्या भटकने जाऊँगी वहाँ पर।'

यह बात सब सहोगलों में फैलती हुई चाची के कानों पर पड़ी तो आग बबूला हो गईं। उसे लगा, जैसे चम्पा धोबिन को भी पारो भड़का आई है। उससे रहा न गया। चटपट नलू की माँ के कमरे में पहुँची। हाथ मटका कर बरस पड़ी...'सुन लो पारो की करतूत ? बड़ा प्यार है न उससे तुम्हें। तुम्हारी ही बेटी की शादी में रोड़े अटका रही है।'

नलू की माँ साग काट रही थी, सो काटती चली गई। एक बार सिर उठाकर देखा और काम में लग गयी। न 'हाँ' कहा; न 'ना'। चाची सुनाती गई....

'इतनी दौड़ धूप कर के नलू की शादी तय की। बेटी अपने घर जाकर राज करेगी। लक्ष्मी तो उसकी ससुराल की दहलीज में लौटी-लौटी पड़ती है। नलू को किस बात की कमी होगी। अब पारो से नलू का सुख नहीं देखा गया। एक यह फूहड़ नलू है कि जब देखो छज्जे में खड़ी होकर घर का सारा भेद उसे बता देती है। कई बार मना किया; लेकिन माने तब ना। अब सुनलो

अगर नलू की शादी न हुई तो उसे जिन्दगी भर दूल्हा भी नहीं मिलेगा, तब बैठाये रखना छाती पर; समझीं।'

इतना सुनने पर नलू की माँ से न रहा गया। बोली.... क्या कर दिया है पारो ने, जरा मैं भी तो सुनूँ!'

'करेगी क्या? कोई बड़ा काम थोड़े ही करेगी? नीचों की सी करतूत करती फिर रही है। नेवते हुए सभी सहोगलों को शादी में शामिल होने से रोक रही हैं। चम्पा धोबिन को भी कुछ लालच दे आई। वह भी नहीं आयेगी। अब बताओ, मैं शादी का इन्तजाम करूँ या पारो की करतूतों को समेटती फिरूँ। क्या मुसीबत ले ली है मैंने अपने सिर पर? फिर मैं न फिक्र करूँ तो नलू का करने धरने वाला कौन है?'

नलू की माँ बिना कुछ कहे-सुने काम में लग गयी। माँ-चाची की बातें आड़ में खड़ी होकर नलू ने सुन ली। चाची को जवाब नहीं मिला तो झुँझला कर चली गयी। नलू की माँ का दिल हाहाकार कर उठा। बड़ी आई है नलू की फिक्र करने वाली। नलू पारो से न बोले तो दीवार से बोलेगी? इस डाइन का पेट कब भरेगा? नलू के पिता को खा गयी। विक्रम को कंगाल बना दिया, अब मेरी बेटी को चौपट करना चाहती है। वह सांड इस कली को एक दिन में मसल कर रख देगा। कहाँ मेरी नलू कहाँ वह पचपन साल का ठूँठ। इस विपत का स्वप्न में भी संदेह होता तो बचपन में नलू का गला घोटकर मार डालती। जब बेटी हुई तो वो कितने प्रसन्न थे, सदा कहते थे, बेटी अपने खर्चका इन्त-जाम कर आई है। नलू को लक्ष्मी का रूप समझते थे। कभी उस पर हाथ नहीं उठाया। रोज शाम नलू के साथ ही कटती। बड़ी हुई तो ऊँगली पकड़कर घुमाने ले जाते। मुँह से निकला नहीं कि खिलौने और गुब्बारे नलू के हाथ में। उन्होंने तय कर लिया था कि नलू को खूब पढ़ायेंगे। नलू भी अपनी कक्षा में सदा प्रथम आती रही। परीक्षा फल देखकर उनकी आँखों में खुशी के आँसू

छलछला आते। क्या स्वर्ग सरीखी गृहस्थी थी मेरी, वे-विक्रम-नलू, मैं और शंकर। शंकर को वो कितना चाहते थे। बढ़िया से बढ़िया खिलाना, बढ़िया पहनाना। सदा कहते थे, बेचारा अनाथ है। हम कुछ नहीं करेंगे तो उसका करने वाला कौन है? जब शंकर पढ़ लिखकर नौकरी करने लगा तो मैंने शंकर की शादी की बात छेड़ी। कितनीआस संजोकर शंकर के लिये लड़कियाँ देखने गयी।

हाय रे भगवान। उस दिन तूने क्या मेरी बुद्धि पर पत्थर फेंके थे जो इस चुडैल को पसन्द कर आई। उस एक गलती ने मेरी स्वर्ग-सी गृहस्थी को नरक बना दिया। मुझे क्या मालूम था कि भोली-भाली दीखने वाली चन्द्रा सर्व गुण सम्पन्न है और मेरे परिवार के लिये नागिन बनकर आयेगी? शंकर की तो मति ही पलट दी। जैसे नाच नचाती है, वैसे नाचता है। भलाई का बदला नहीं चुकाना था तो न चुकाती, पर बुराई तो न करे। मैंने नहीं सोचा था कि हमारी छाँव में जीकर हमारे ही बच्चों को तबाह करेंगे।

'मौसी! ओ मौसी!'

'अरी कैसे आई पारो? जल्दी से तू घर चली जा नहीं तो नलू की चाची मुझे बुरा भला कहेगी। वो तुझसे बहुत नाराज़ है।' नलू की माँ ने उत्तर दिया!

'अरे तुम्हें पता ही नहीं, नलू की चाची तो कहीं बाहर गयी है, सज-धज कर। इसलिये तो मैं तुमसे मिलने आई हूँ। तुम बीमार थी न?'

'हाँ अब कुछ ठीक हूँ। अब मेरा जी इससे ज्यादा नहीं सुधरने का पारो।'

'ऐसी बात मुँह से मत निकालो मौसी। विक्रम और नलू को तुम्हारा ही सहारा है।'

'अरे काहे का सहारा है। दोनों मिट्टी में मिले जा रहे हैं और मैं बैठी टुकर-टुकर निहार रही हूँ। मेरी बुद्धि को पता नहीं, क्या हो गया। कुछ समझ में ही नहीं आता।'

'तुम्हारी समझ में तब आयेगा जब नलू मिट्टी में मिल जायेगी।'

'मिट्टी में तो वह मिल गयी। हल्दी तेल चढ़ चुका है, अब देर ही क्या है ?'

'मौसी कुछ कर डालो। नलू को बचा लो। मेरा मन बड़ा तड़प रहा है।'

'पारो, ऐसे वचन मुख से मत निकाल। नलू के हल्दी तेल चढ़ चुका है। मैं भी इस शादी से सहमत नहीं हूँ, पर अब कुछ मत बोल। जो नलू की तकदीर में लिखा है, वह होकर रहेगा।'

'चलती ट्रेन के आगे लेट जाओ और कहो कि तकदीर में ट्रेन से पिसकर मरना लिखा था। मैं नहीं मानती इस बात को।'

'हाँ पारो, बात तो तू ठीक कह रही है; पर बता मैं क्या करूँ। मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है।' और नलू की माँ फूट-फूटकर रोने लगी। पारो चुप हो गयी; पर उसका मन भारी हो गया।

× × ×

'जयराम जी की विक्रम बाबू !'

'कहो भई कैसे हो चन्दर ? पान का धन्धा कैसा चल रहा है ?'

'बहुत मस्त चल रहा है बाबू। तुम्हारे पिता ने बनवाई है यह दुकान, ईंट-ईंट में बरकत है।'

'अच्छा। बस खिला दो इसी बात पर एक पान।'

'यह लो। पान तो कब से खिलाने की इच्छा थी; पर आप तो मिलते ही नहीं। कहाँ रहते हैं आजकल ?'

चन्दर पनवाड़ी होते हुए भी विक्रम से बुजर्गों का बरताव करता था। विक्रम भी उसका मान रख लेता था।

'नौकरी ढूँढ रहा हूँ चन्दर। कहीं मिल जाय तो मैं भी काम-काज का हो जाऊँगा।'

'तो अभी नौकरी नहीं मिली क्या ?'

'अरे कहाँ की नौकरी।'

चन्दर का मुँह उतर गया। वह चुप होकर नीचे देखने लगा।

'क्यों चन्दर, तुम इतने उदास क्यों हो गये !'

'विक्रम बाबू, जो बात बताना चाह रहा था; अब नहीं कह सकूँगा।'

'नहीं, नहीं, कहो न, तुम्हें मेरी कसम।'

'नहीं जिद्द न करो। आपको बहुत बुरा लगेगा।'

'जो भी हो, बता दो।'

'विक्रम बाबू, मुहल्ले भर के लोग तुम्हें बहुत बुरा-भला कहते हैं।'

'अरे, मैंने किसी का क्या बिगाड़ा है।'

'सब कहते हैं कि तुम्हारे रगों में भाई का खून नहीं है; इस-लिये बहन की बेमेल शादी पर चुप हो। विक्रम बाबू, वह आपका होने वाला बहनोई बड़ा बदमाश है। उसकी करतूतें तो कल्लू मोची से पूछो, रोंगटे खड़े कर देगा तुम्हारे। घृणा से नाक भौं सिकोड़ने लगोगे। कल दो बाबू यहाँ पान खरीदने आये तो वे भी यही बात कर रहे थे।'

'कौन थे ?'

'पता नहीं मुझे, पर आपके बारे में बोल रहे थे इसलिये मैंने आहिस्ते-आहिस्ते पान बनाया।'

'हूँ !' कहकर विक्रम चल दिया।

घर पहुँचा तो सुबकने की ध्वनि उसके कानों पर पड़ी। वह चप्पल उतार कर चुपचाप माँ के कमरे में पहुँचा। एक ओर नल्लू जमीन पर बेसुध पड़ी सो रही थी। सम्भवतः कोई स्वप्न देख रही थी। दूसरी ओर मुँह ढाँके माँ सुबक रही थी। विक्रम माँ के पास बैठ गया और दबे स्वर से पूछने लगा—'क्या बात है माँ ?'

माँ ने सुबकते-सुबकते उत्तर दिया....'अरे क्या बताऊँ बेटा। मैं तो अपनी नज़र में गिर गयी हूँ। अपने आपसे घिन हो गयी है। हाय ! मैं कुछ नहीं कर सकती अपनी दुलारी नलू के लिये। लोग तो इसे अंधे कुएँ में ढकेल रहे हैं। ऐसा जानती तो जनमते ही नलू का गला घोंट देती।' और फिर फूट-फूटकर रो पड़ी। विक्रम को परिस्थिति समझने में देर नहीं लगी। वह सिर लटका कर जमीन कुरेदने लगा। दो क्षण बाद फिर बोली—'आज पारो अपना मन उँड़ेल गयी। वो कौन की कौन, पर उसका मन नलू के लिये तड़प रहा है और मैं चुपचाप बैठी सब देखती जा रही हूँ। अब कुछ नहीं हो सकता रे विक्रम। उसे तो हल्दी तेल भी.... !'

वह बिना वाक्य पूरा किये रो पड़ी। विक्रम का दम घुटने लगा। रोने-रोने को हो गया, पर आँसू उसके जीवन में कहाँ बचे थे ? आँख गीली नहीं हुई। मन हुआ कि किसी बहाने से उस कमरे से हटे। पर किस बहाने से ? माँ से ऐसी मनस्थिति में वह एक भी शब्द कहने की स्थिति में न था। न माँ ही ऐसी परिस्थिति में थी, कि कुछ कह-सुन कर उसको समझाया-बहलाया जाता। इसी पशोपेश में विक्रम रहा। जाने क्या उबल रहा था उसके मन में ? एक विचार उठता—पानी के स्थिर सतह पर पड़ी तेल की बूँद की तरह धीरे-धीरे फैलता, विविध रंग-रूप दिखा कर विलीन होने लगता, तब तक कोई दूसरी बूँद उसकी अन्तरात्मा को निचोड़ कर चू पड़ती। विचारों को रंग कर, विचारों में खोया हुआ विक्रम जाने कब वहाँ से धीरे-धीरे खिसक गया, उसे ही नहीं मालूम। माँ औंधे मुँह लेटी-लेटी सिसकती रही। वह माँ के पास से तो जैसे-तैसे खिसक आया, पर उसकी सिसकियाँ ज्यों की त्यों विक्रम के कानों में सही सलामत थीं।

उसे लगा जैसे किसी ने घाव पर जमी पपड़ी खरोंच दी है। घाव हरा हो उठा, खून बहने लगा। जिस बात को भुलाने के लिये वह घर से बाहर चक्कर लगाता था, वह फिर राक्षसी

रूप धारण कर उसके सामने खड़ी हो गयी। वह छत पर चढ़कर टहलने लगा। चारों ओर अन्धकार था, घुप्प अन्धकार। कुछ सूझ नहीं रहा था। उसे लगा जैसे, यह अन्धकार उसकी नलू को घेरने के लिये घनीभूत होता जा रहा हैं। तरह-तरह के प्रश्न वाक्य और उद्गार, पूरे और अर्धवाक्य नाना भाँति के रूप बनाकर उसे कुरेदने लगे। नहीं मैं नलू को इस विवाह-सूत्र में नही बँधने दूँगा। जिस नलू के अनमेल विवाह ने मुझे इतनी पीड़ा पहुँचाई कि नौकरी ढूँढना छोड़ कर यहाँ भाग आया, क्या उस विवाह को होने दूँ? बेचारी नलू को उसके अभागे गरीब भाई के सिवाय है ही कौन? अगर मैं कुछ न करूँ तो वह आँखों में आँसू और हृदय में पीड़ा छिपा कर सब सह जायेगी। नहीं; मैं नलू को बचाऊँगा। यह विवाह नहीं होगा....कभी नहीं। नलू को अच्छा वर मिलना चाहिये। योग्य वर—युवक पढ़ा लिखा, अच्छे विचार का, अच्छे स्वभाव का—पति....जो सब दृष्टियों से नलू के अनुकूल हो। उससे प्यार करे....सच्चे अर्थों में उसके जीवन में वरदान बनकर आये। पर क्या यह सब संभव है? क्यों नहीं होगा? नलू में कमी है, किस बात की? वह कान्यकुब्ज ब्राह्मण कुल की सुशील, सुन्दर, पढ़ी-लिखी, घर के काम काज में योग्य लड़की है। गरीबी की आँच में जरा-झुलस गयी है....बदली के आँचल में छिपे चाँद की तरह वह फीकी और उदास रहने लगी है, जैसे उसमें कोई जान नहीं, उसकी अपनी कोई रुचि अभिरुचि नहीं। जो सामने आता है, वह बेमन से स्वीकार करने के सिवा और कर भी क्या सकती है? यह हमारे जीवन की कितनी बड़ी विवशता है! कैसी गलत मान्यताओं को छाती से चिपकाये हुए हम मध्यवर्गीय लोग चुपचाप अँधेरी गुफा में पूरी की पूरी उम्र काटने के लिये वाध्य हैं। लेकिन यहाँ भी क्यू लगा कर आसपास के किसी कमजोर को धक्का दिये जा रहे हैं।....किसी की टाँग खींच कर, किसी

को ठेल कर, इस अँधेरी खोह का जीवन जीना चाहते हैं। हाय रे हम और हमारी अन्धी आस्था! क्या कमी थी हमारे घर में। वाप ने टोकरी भर-भर कर रुपया कमाकर छोड़ा था। इकलौती बेटी का व्याह करने के लिये क्या कम था? लेकिन घर के भूत—ये चाचा-चाची दीमक की तरह पाई-पाई चाट गये। आसमान से गिरे हुए प्राणी की तरह अब हम तीनों निराधार हैं। बी० ए० तक पढ़ा, मिलिटरो में रहा और अब वेकार। अब नलू की शादी के लिये अपने लुटे-बिके मजबूर मन को किस तरह मना लूँ? काफी कशमकश के बावजूद भी इस मन को इतना नहीं मार सका कि चचा-चाचो के चुनाव पर सहमत हो जाऊँ। पर इनकार भी किस बूते पर कर सकूँगा। कहाँ जायेंगे वे सब? वीसवीं सदी के पाँचवें दशाब्दि का वेकार ग्रेजुएट। नलू और माँ कहाँ जायेंगे? अखिर इन्हें रहने के लिये घर चाहिये—चूल्हा चावल....ईंधन... कपड़े... रुपया! इन सबकी जड़ में सींचा जाने वाला रुपया चाहिये। यह रुपया ही तो, आज के जीवन का नियामक है। नलू की शादी में सबसे बड़ा व्यवधान यही रुपया है। रुपये की कमी, उसका अभाव, नलू की शादी में रोड़ा है। काश मेरे पास चालीस-पचास हजार की, काले दरवाजे से काली करतूतों से आई पूँजी होती....कोई भी कुलीन ब्राह्मण युवक दहेज की लालच में लार टपकाता। पर अब? नलू सुन्दर है, हुआ करे। पूछता कौन है? वह ब्राह्मणों के कान्यकुब्ज कुल में पैदा हुई है, हुआ करे। उसके भाग से कोई दुहाजू....तिहाजू पाँच बच्चों का बाप वूढ़ा ठूँठ ही आज की कान्यकुब्ज व्यवस्था में सुरक्षित रखा मिल सकता है। यदि मैं इन सड़ी-गली आस्थाओं को झकझोर कर तोड़ डालूँ तब? छिन्न-भिन्न व्यवस्था के खंडहर पर जमकर अपनी भारी लात मारकर चकना चूर करूँ। किसी भी जाति कुल से, किसी आधुनिक विचार वाले समवयस्क युवक को

मनाऊँ....! नलू को उसके जीवन से जलवती नदी की तरह जोड़ दूँ तो... ? तो विजातीय विवाह के नाम पर सब कान्य-कुब्जियत का ढोंग मचाने वाले कुलीन लोग दल बाँध, हर नगर, गली-चौराहे पर भूँकने लगेंगे भूँकेंगे तो भूँको! लाउड स्पीकार लगाकर भूँको। विक्रम इस व्यवस्था से सहमत नहीं होगा। जाति, कुल और समाज के ये नियम.... जानलेवा परंपरामें, लोगों की बिगड़ी हुई धारणायें....कौन है इन सबका नियंत्रण करने वाला ? समाज इन गलत मान्यताओं का नियंत्रक है। आखिर यह समाज है क्या बला ?....क्या वह एक व्यक्ति है ? या सब आदमी इस मान्यता को पालने वाले समाज के साथ हैं ? कुछ बुजुर्ग... कुछ पुराने घाघ बूढ़े खूँसट ही तो इन भूकने वाले लोगों में हैं ? असमर्थ व्यक्तियों का यह समाज अपना त्राण चाहता है। चाहता है किसी सुविधाजनक मान्यता को स्वीकार करे। अपने विकास का रास्ता टटोलें। उस पर बढ़ें ! मगर कहीं रास्ता है भी ? हैं क्यों नहीं ! बिलकुल स्पष्ट, प्रशस्त जनपद दीख रहा है, पर ये—पुरानी मान्यता के कटे हुए भारी भरकम ठूँठ उस रास्ते पर अड़े हैं। पुरानी सडाँध को निकालने का रास्ता कहाँ रह गया है, न नया प्रवेश करता है न पुराना बदलता है। तब समाज की व्यवस्था में जीवन देने वाले आयेंगे कहाँ से ? आखिर यह व्यवस्था, ये मान्यतायें, दुनिया भर के भले-बुरे नियम-उपनियम किस लिये हैं ? आदमी के लिये न ! समाज की सुव्यवस्था, संगठन, एवं व्यक्ति के सुख और आशापूर्ण भविष्य के लिये न ! पर अब तो आदमी ही गौण हो गया दीखता है। हर फालतू बात के आगे आदमी और उसकी जिन्दगी का कोई मूल्य ही नहीं समझा जाता। किस कदर दूभर हो गया है यह जीवन आज के समाज में।

—मैं बात-बात में कितनी दूर तक बहक गया। किसी दूसरी जाति में नलू को व्याह दूँ ? कान्यकुब्ज मान्यताओं का

यह किला क्या मेरे अकेले के पद प्रहार से मिट्टी में मिल जायेगा ? असंभव। किन्तु युवक क्यों नहीं इसमें आने वाली कठिनाइयों को हल करने में आगे आते। जिन कनौजियों को अपने कुल की युवती-कन्याओं के शील-चरित्र और पवित्रता का घमंड है वे कोरे शब्दों के घुँघरू बजाकर क्यों रह जाते हैं ? आगे आयें....। अपने बुजुर्ग, धनी और मान्यवर नेताओं को ललकारें। कि खोलो अपनी तिजोरियाँ गरीब माँ-बाप की बेटियों, मजबूर भाई की बहनों का जीवन बरबाद होने से बचाने के लिये। समाज में एक दो नहीं, हजारों विक्रम हैं....। उनकी नलू जैसी मासूम बहनें हैं। है आपके पास इन अनगिनत नलू और विक्रम की मजबूरी का कोई समाधान ? नहीं है तो फिर डूब क्यों नहीं मरते। किसी चौदह साल की कच्ची उम्र की लड़की को साठ वर्ष के दादा के साथ सुहाग का टीका लगाते देख कर। या फिर तोड़ने दो हमें इन जर्जर मान्यताओं को। क्यों भूकते हो ?

यौवन की आवश्यकताओं के सम्मुख लाचार विधवाओं की यह दिन दूनी बढ़ती सेना तुम्हारे समाज और कुल की छाती पर प्रति दिन प्रश्न चिन्ह की कील-सी गड़ती जा रही है। क्या ये सब यों ही हरिकीर्तन करती हुई, अपने वृद्ध पतियों के नाम पर सती बनी बैठी रहेंगी ? किसी का कदम नहीं डगमगायेगा ? क्या कोई किसी अवसर विशेष पर, फिसल कर तुम्हारे कुल के घमंड की नाक पर छूरी नहीं घुमायेंगी ? और देश के ये सब छिपे और खुले रूपके बाजार ?....आखिर किन लोगों के भरोसे चलते हैं ? हमारे समाज की भ्रान्त वैवाहिक मान्यताओं के जहर में ही तो ये कीटाणु पनप रहे हैं।

समझदार कान्यकुब्ज बाप, पैदा होते ही बेटी का गला घोंट कर मार डालता है....जैसे पैदा होते ही साँपिन अपने बच्चे खा जाती है। चन्दा के बाप ने क्या किया ? पैदा होते ही लड़की

का गला घोंट देता है....एक के बाद एक सात लड़कियों का गला घोंटा। बेचारा शायद कंस बनने पर मजबूर हो गया। लेकिन आठवीं बार कुछ दया आ गयी और चन्दा जी गयी। लाड़-प्यार से बड़ी हुई। उम्र भर की कमाई विवाह में लुटा दी। टोकरी भर-भर कर रुपया दिया। सेरों सोना चढ़ाया; लेकिन हुआ क्या ? लड़के वालों की कभी तृप्ति थोड़े ही होती है। घटिया दहेज का उलाहना देकर लड़की को सताया जाता, पीटा जाता। सुना की वह माँ बनने वाली थी। उस अवस्था में ससुराल वालों ने उसे इतना सताया, इतना पीटा कि गूँगे जानवर की तरह मुँह बा कर रह गयी। चलो, किसी तरह इस नरक से छुट्टी तो मिली। माँ-बाप करम पीटते, बिलखते रह गये, लेकिन उस भूखे साँड़ पति ने छठे महीने दूसरी शादी कर ली। यह है नारी का मूल्य हमारे इस समाज में।

नलू नारी है। सबसे बड़ी बात मनुष्य है। उसे मनुष्य का जीवन सार्थक करना है। जीवन के सुख, हँसी-खेल, आमोद-प्रमोद से उसे वंचित करने वाली व्यवस्था उस पर लादने का किसी को क्या अधिकार है ? आखिर विधाता ने ऐसी कौन-सी विशेष छाप इन कान्यकुब्जों की चमड़ी पर लगा कर दुनिया में भेजा है, जिसके लिये नलू को धर्म और कुल के नाम पर पीपल वाली गली के उस बूढ़े खूसट काल भैरव को, आठों बलि के बकरे की तरह रेत दूँ।

जाति और कुल की सीमायें तोड़कर बाहर कदम बढ़ाने के लिये मैं तैयार हूँ। आये कोई नौजवान सामने, जिसे अपने श्रेष्ठ रक्त का अभिमान हो। रोके इस विक्रम को, अगर किसी में माद्दा हो। लेकिन मैं सब जानता हूँ, कोई आगे नहीं बढ़ेगा। किसी को क्या पड़ी है जो जाति, कुल और समाज की टूटती दीवारों की दरार में सीमेंट बन कर धँसे। किसी में वह पानी भी तो हो। सबके सब कायर हैं....स्वार्थ के पुतले। अर्थ के

दास !....रुपये को सेज पर लेटने वाले साँप। गोया ब्याह कन्या से नहीं, दहेज से करते हैं। आखिर कान्यकुब्ज युवकों की यह नयी पीढ़ी भी तो अपनी पुरानी जर्जर मान्यताओं और संस्कारों की उपज है। मैं इन सब पर थूँकता हूँ। सबसे बड़ा है आदमी। उसकी मानवता को सुरक्षित रखने के लिये प्रत्येक वस्तु का मोल चुकाया जायेगा। और मैं उसके लिये तैयार हूँ। अब किसी हालत में यह शादी नहीं होगी।

उफ ! कितना धुआँ इकट्ठा हो गया है मन में। सोच-सोच कर सिर दुखने लग गया। अच्छी खासी सर्दी में माथे पर पसीना छलक आया। केवल माँ का अवरोध है। यही तो कहेगी लड़की पर तेल हल्दी एक बार चढ़ता है। उसकी शादी अब कैसे टूट सकती है। हूँ ! एक बार तेल चढ़ता है...हर सड़ी-सड़ी बात में फौलादी जंजीर डाल दी गयी है कि एक-एक कड़ी काटते हुए सारी जिन्दगी खतम हो जाय—और उसके अनुभव से आगे आनेवाला कोई समझदार कभी ऐसी गलती करने की कोशिश न करें।

क्या जीवन का सारा दुख मेरी लाड़ली बहन ही भोगती जायेगी ? नहीं, वह अनाथ नहीं है। उसका भाई है। वही भाई, जिसे बचपन से राखी बाँधकर अपनी रक्षा के लिये वह मूक प्रार्थना करती आई है। मैं उसे बचाऊँगा, जरूर बचाऊँगा। वह मेरी एक मात्र बहन है। राखी के अटूट कच्चे डोरे मुझे बुला रहे हैं। मेरा कर्तव्य याद दिला रहे हैं। नलू का विवाह उस नर-पिशाच से नहीं होगा। वह बूढ़ा बैल मेरे बहनोई का पद ग्रहण करेगा ? कभी नहीं। उस नर-पिशाच से नलू का विवाह नहीं हो सकता। किसी भी तरह नहीं।

फिर उसके मन में एक दूसरा ही चित्र उभर आया। यथार्थ का चित्र—विक्रम तू बेरोजगार है। तू बहन की शादी नहीं करा सकेगा, तू शादी जहाँ भी करायेगा सो झंझटें आयेंगी

और फिर शादी में रुपये लगते हैं, ढेर सारे रुपये। जीवन भर की कमाई एक लड़की की शादी में खत्म हो जाती है। इतने रुपये कहाँ से आयेंगे। नलू की शादी होनी जरूरी है। फिर इस शादी में रोड़े डालोगे तो तुम्हें माँ और बहन को लेकर अलग होना पड़ेगा। उनको कहाँ रक्खोगे? क्या खिलाओगे....? विक्रम उठो, यथार्थ को पहचानो। मन पर पत्थर बाँध कर चुप बैठ कर नलू की यह शादी हो जाने दो। अगर तुम कमाते होते, तो बात दूसरी थी; परन्तु अब कुछ नहीं कर सकोगे विक्रम।

विक्रम छत पर इधर-उधर तेजी से टहल रहा था। वह होश में होकर भी, बेहोश था। उसके मन में 'हाँ' 'ना' में युद्ध हो रहा था। महाभारत का युद्ध, जिसमें दोनों ओर के तर्क बड़े अकाट्य थे। बुद्धि यथार्थ का पक्ष ले रही थी और हृदय बहन के प्रति कर्त्तव्य का। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे। हृदय ने कहा—अगर तूने नलू की शादी उस नर-पिशाच से करवाई तो तुझे कन्या हत्या का पाप लगेगा। वह जीवन भर रोयेगी और उन आँसुओं का जवाब तुम्हें देना पड़ेगा। बुद्धि कहती—'बिना पैसे मैं क्या करूँ? न माँ-बहन को अलग रख कर खिला-पिला सकता हूँ, न बहन की शादी कर सकता हूँ।'

'अरे विक्रम, यह क्या बड़बड़ कर रहा है?' चाची ने छत पर आते हुए कहा।

विक्रम का जैसे स्वप्न टूट गया। उसे यह ज्ञात नहीं था कि वह बड़बड़ा रहा है। होश सम्हाल कर बोला....'कुछ नहीं चाची।'

'कुछ कैसे नहीं। कुछ बात जरूर है। पर तू चाची को क्यों बताने लगा है।'

'चाची, सच बात तो यह है कि मैं नलू की शादी रोकवा चाहता हूँ। उसकी यह शादी नहीं होगी।'

चाची पर जैसे पहाड़ गिर पड़ा। बोली....'क्या वक रहा है ? नलू को हल्दी तेल लग चुका है। वह पराई हो गयी। अब उसकी शादी होनी जरूरी है।'

'तेल लगे या तेल का बाप, नलू की शादी नहीं होगी,.... कान खोलकर सुन लो।'

विक्रम और चाची का ऊँचा स्वर पारो के कानों में पड़ा और विक्रम की माँ के कानों में भी। दोनों लपकती हुई छत की ओर बढ़ीं। पहले विक्रम की माँ पहुँची। बोली....'अरे यहाँ क्या झगड़ा हो रहा है....जरा मैं भी तो सुनूँ।

चाची बोल उठी 'विक्रम, नलू की शादी रोकना चाहता है।'

'हाँ माँ, मैं यह शादी नहीं होने दूँगा।'

विक्रम की माँ बोली—'तेरा दिमाग खराब हो रहा है क्या ? अब क्या हो सकता है बेटा। शादी जरूर होगी।'

'माँ। अगर तुम में जरा भी ममता है तो इस शादी को रोको।'

पारो भी छत पर चढ़ चुकी थी। बोली—'विक्रम, अपनी जान की बाजी लगा कर नलू की शादी रोक। यह शादी पाँच हजार के लालच में की जा रही है।'

पाँच हजार का नाम सुनते ही नलू की चाची के कान खड़े हो गये। भूखी शेरनी की तरह पारो की ओर लपक कर बोली....''कैसा पाँच हजार ? कौन पाँच हजार ?''

''अरे चाची, पाँच हजार का नाम सुनते ही शक्ल पर हवाईयां क्यों उड़ने लगी ? पीपल वाली गली के पंडित जी को पाँच हजार सूद के रूपये चुका दो, बेचारी नलू की जान छूटे। अपना कलंक उस नन्हीं सी जान पर काहे को डाल रही हो।'' पारो ने कहा।

विक्रम की माँ की समझ में कुछ नहीं आया। विक्रम से

रहा नहीं गया। वह पूछ बैठा और पारो ने विस्तार से समझा दिया। विक्रम और माँ के कान खड़े हो गये। मौका पाकर चाची खिसक गई। चाचो को न पाकर विक्रम ने कहा—"माँ, अब हद हो गयी। अगर हमें पेड़ के नीचे भी रहना है, तो भी इस घर को छोड़ कर अभी निकल चलेंगे। नीचे चल कर सामान बाँध लो।'

पारो बोल उठी। "पेड़ के नीचे रहें तुम्हारे दुश्मन। जब तक तुम्हारा कोई इन्तजाम नहीं होता तुम सब मेरे भाई के घर रहो। उनके पास बड़ा घर है। चलो मैं तुम्हें पहुँचा आऊँ।"

....और सुबह होते ही देखते देखते विक्रम और नलू अपना सामान बटोर कर ताँगे में रखने लगे।

चाची बड़बड़ाती जा रही थी; परन्तु किसी को उसकी बातों पर ध्यान देने का समय नहीं था। शादी-ब्याह वाले अस्त-व्यस्त घर से, होने वाली दुल्हन, माँ और भाई के साथ अस्त-व्यस्त हालत में ही निकल पड़ी थी। उसे हल्दी तेल वाले कपड़े तक उतारने का ध्यान नहीं रहा। गली मुहल्ले के लोग....'क्या हुआ'.... 'क्या हुआ' ही करते रह गये और ताँगा बढ़ता जा रहा था इस घुटन भरे वातावरण से दूर स्वच्छ वायु की ओर।

× × ×

श्यामा अपने घर में नये मेहमानों को पा कर विभोर हो उठी। श्यामा पारो की अविवाहिता छोटी बहन थी। श्यामा की इच्छा पंख लगा कर उड़ना चाह रही थी। खिड़की से, छज्जे से, छिप-छिप कर, विक्रम को निरंतर देखना चाह रही थी। अन्दर से उस का दिल धुक-धुक कर रहा था।....यह विक्रम भी कैसा अजीब है! इधर उधर देखने की कोशिश ही नहीं करता; जब देखो सिर लटकाये बैठा रहता है। विक्रम को छू-छू कर हवा श्यामा की ओर उड़ जाती। श्यामा के शरीर में सिहरन पैदा होती। वह कल्पना के पँखों पर उड़ जाती,....स्वप्न लोक में।

जहाँ पर वह अपने आप को विक्रम के बाहुपाश में कैद पाती.... और विक्रम की गरम-गरम साँस, समीप आती जाती.......!

जब-जब विक्रम घर से निकल जाता, श्यामा फुदक-फुदक कर नलू के पास जाती और खूब घुल-घुल कर बातें करती। नलू भी इस स्वच्छन्द वातावरण में हम-उम्र सहेली को पाकर निहाल हो गई। बेटी को प्रसन्न देखकर माँ के सुख के आँसू ढुलक पड़ते। श्यामा के भाई रमाकान्त ने मन ही मन विक्रम को श्यामा के लिए स्वीकार कर लिया था। चार-पाँच वर्ष से वह श्यामा के लिए अच्छा वर ढूँढ़-ढूँढ़कर थक गया था और उसकी पत्नी रोज इस बात पर चर्चा छेड़ देती थी। अब विक्रम के लिए नौकरी ढूँढ़ने में रमाकान्त भी हाथ बँटाने लगा। पारो, अपने पड़ोस का घर नलू और नलू की माँ से रिक्त पाकर कुछ दिन के लिए मायके रहने आ गई। पारो, पारो की भाभी, श्यामा, नलू और नलू की माँ की खूब चौकड़ी जमती। दिन भर खाना-पीना, हँसना-बोलना। रमाकान्त और विक्रम भी प्रायः अपना समय साथ ही बिताते। घर पर हों तो हँसने-बोलने एवं खाना खाने में साथ रहता। बाहर हों तो नौकरी की खोज में साथ रहता।

इस प्रकार न जाने कब कैसे दस दिन कट गये। इस नौकरी की खोज में रमाकान्त का पुराना दोस्त रामानन्द मौके पर काम आया। वह साप्ताहिक अखबार निकालता था। विक्रम को इस अखबार में सौ रुपये की नौकरी मिली। इसी सौ रुपये के लिए विक्रम ने सुबह से रात तक काम करने का वचन दिया। रामानन्दजी भी प्रसन्न थे। अभी तक वे अकेले ही सब काम करते थे, अब हाथ बँटाने के लिए कोई मिल गया। विक्रम ने भी मन ही मन सोचा कि वह सुबह एक-आध ट्यूशन पढ़ायेगा और फिर दिन भर अखबार के लिए काम करेगा।

इस नौकरी से सबको अत्यधिक खुशी हुई। तीन दिन बाद

शाम को खाना खाते समय रमाकान्त से और चुप न रहा गया। बोले। ...'विक्रम, तुम्हें श्यामा कैसी लगती है ?'

'अच्छी है, क्यों ? ऐसी हँसी दबाकर यह प्रश्न क्यों पूछ रहे हो ?' विक्रम ने लज्जा से कुछ सकुच कर कहा।

'भाई विक्रम, मैं श्यामा की शादी जरा जल्द करवाना चाहता हूँ।'

'क्या कोई लड़का खोज लिया है ?'

'तुमसे बढ़कर श्यामा के लिए कहाँ लड़का मिलेगा !'

'नहीं भैया, मैं तब तक शादी नहीं करूँगा, जब तक बहन को चिन्ता से मुक्ति न मिले।'

'तुम शादी कर लो। नलू को भी मिल ही जायेगा।'

'नहीं भाई, यह नहीं हो सकता। जब तक बहन के हाथ पीले नहीं होंगे, मैं शादी नहीं करूँगा।'

'अच्छी बात, मैं तुम दोनों की सगाई करवाये देता हूँ। अपनी शादी चाहे नलू की शादी के बाद करना।'

'नहीं, ऐसा मत...'

'अब नहीं-नहीं किये जाओगे कि बुजुर्गों की भी कुछ मानोगे।'

अपनी बात हारते देख उसे खीझ उठी। शादी की चर्चा ने उसके पुराने फफोले फोड़ दिये। उसे कालेज के दिन साफ याद आये, जब वह बी० ए० में पढ़ता था और रजनी एफ० ए० में। रजनी का प्यार देखकर विक्रम उसकी ओर झुका। परन्तु विक्रम को मालूम नहीं था कि रजनी का प्यार केवल ढोंग था। वह उससे हिन्दी पढ़ना चाहती थी। वह हिन्दी में कमजोर थी और विक्रम हिन्दी में प्रथम आता था। परन्तु जब रजनी अपना मतलब पूरा कर चुकी, तब विक्रम को अछूत-सा भी करती हुई समझती थी, क्योंकि वह अमीर घर की बेटी थी। रजनी के इस व्यवहार ने उसके संवेदनशील जीवन में ऐसी भयानक उथल-पुथल मचा दी थी कि नारी जाति से उसका विश्वास हट

गया था। फिर नारी से विवाह करने के लिए वह कैसे राजी होता? अपनी खीझ प्रकट करते हुए उसने कहा—'भाई साहब! आपको बुरा लगे या अच्छा; मैं विवाह नहीं करना चाहता। आज मैं जिस बवंडर में घिरा हूँ, वहाँ से मैं किसी को कुछ नहीं दे सकता और इसीलिए मैं किसी से कुछ पाने की भी आशा नहीं करता। आपने मुझे नौकरी दिलवाई है; अगर आप उसे छुड़ाना चाहें तो छुड़वा सकते हैं....।' कहता हुआ विक्रम चला गया। रमाकान्त को बहुत बुरा लगा। उसके अहम को जैसे किसी ने जलती सिगरेट के टुकड़े की तरह पैर से कुचल दिया। वह छटपटाने लगा। आज उसके पास अविवाहित बहन न होती तो उसे यह अपमान क्यों सहना पड़ता?

दूसरे दिन विक्रम एक किराये का घर ठीक करके मां-बहन को रमाकान्त के घर से ले गया। मगर घर में जाते ही वह सुबह से शाम तक पैसा कमाने की चक्की में पड़ गया। नलू के लिए वर ढूँढ़ने के लिए कम समय मिलता। तब भी उसने खोज जारी रक्खी। जैसे-जैसे दिन कटते जाते, माँ नलू के विवाह को लेकर दुखी होती।

नलू ने देखा कि उसके कारण उसका भाई और ममता से भरी माँ दुखी हैं। वह किसी को दुख नहीं देना चाहती थी; परन्तु समाज के नियमों के अनुसार वह सबके दुख का कारण बन गयी। वह विक्रम की तरह नौकरी करके पैसा नहीं ला सकती थी। बिना पैसे घर की गरीबी नहीं जा सकती, और बिना गरीबी मिटे उसका विवाह असम्भव है, बिना उसका विवाह हुए घर में सुख नहीं लौट सकता। अब माँ-भाई उसके कारण दुखी रहेंगे?....सदा के लिए दुखी। उसे सबके रास्ते से हट जाना चाहिये, आत्महत्या?....आत्महत्या करनी चाहिए! यही एक-मात्र उपाय है?....आत्महत्या ....नहीं?....नहीं, आत्महत्या कायरता की निशानी है। तो फिर क्या करें....क्या करें?

विक्रम परेशान था अखबारी-दफ्तर की नित्य नयी झंझटों के कारण और घर में बहन के विवाह की चिन्ता के कारण। कनौजी घर पैसा माँगते हैं। टोकरी भर-भर कर पैसा।.... कहाँ से लाये वह पैसा !....लड़की की बात तो वह करते ही नहीं; दहेज पूछते हैं, नकद पूछते हैं।....वह क्या करे ? घर से भाग जाये ? कहीं एकान्त में, इस दुनिया की झंझटों को पीछे छोड़ कर....! फिर न कोई माँ होगी, न बहन होगी, न दुनिया की मुसीबतें होंगी।....नहीं,....वह ऐसा नहीं करेगा, कभी नहीं करेगा। दुनिया से भाग जाना कायरता है, पलायन है। और फिर अगर वह भाग जाता है, तो उसके पीछे माँ-बहन क्या करेंगी। जहाँ भी वह रहेगा, उसे शान्ति नहीं मिलेगी।

माँ अलग दुखी थी। मन ही मन घुल रही थी। वो चल बसे, यहाँ पूरा घर नष्ट हो गया। तेल-हल्दी लगाकर भी नलू की शादी न हो सकी, बेटे की नौकरी छूटी और अगर मिली भी तो सौ रुपयों पर जान न्योछावर कर रहा है। माँ की तबीयत वैसे ही खराब थी। कोशिश करने पर भी वह सुधर नहीं रही थी। दिन बीतते जा रहे थे, दुख बढ़ता जा रहा था, बढ़ता ही जा रहा था। दिन बीते, महीने बीते और फिर मई का आधा महीना भी बीत गया। बाहर तेज गरमी पड़ने लगी। माँ का बूढ़ा शरीर पहाड़ जैसा दुख और बाहर की तपती गर्मी को सह नहीं सका। एक दिन वह सोकर उठी तो बेहोश होकर खाट से नीचे गिर पड़ी।....सिर पर चोट लगी। कुछ खून बहा....और वह फिर होश में न आ सकी। विक्रम और नलू रो-बिलख कर रह गए।

: ३ :

'अरे मोहन तू यहाँ कैसे ?' विक्रम ने सीताबर्डी के वेरायटी चौक पर मोहन के कंधे पर हाथ रखते हुए पूछा।

'अरे आप नागपुर में कब आये ? आप तो जबलपुर वापस चले गये थे न ?' मोहन ने अचम्भे से पूछा।

'हाँ मोहन, मैं वापस चला गया था; लेकिन मजबूरी फिर खींच लाई।'

'आपका मतलब नहीं समझा। जरा साफ-साफ कहिए न।' मोहन ने कहा।

'जाने भी दो।' विक्रम ने टालते हुए कहा।

'नहीं, जाने मत दीजिए, बता दीजिए। इतने दिनों में तो मिले हैं और हम एक-दूसरे का सुख-दुःख भी न सुनें तो मित्रता कैसी ? आइये दुग्धालय चलें। वहीं बैठकर थोड़ी देर बात करेंगे। मोहन ने कहा।

विक्रम लाचार हो गया। कहने लगा 'अब मजबूर करते हो तो चलो।' विक्रम मोहन के साथ दुग्धालय में जाकर बैठ गया। मोहन ने चाय और चिवड़ा मँगाया और विक्रम से पूछा—'हाँ, तो बताइये आप जबलपुर से नागपुर कब और क्यों आये ?'

'दिल्ली से मैं सीधा नागपुर आ गया था, तुम्हें मालूम है। लेकिन मैं जिस मित्र के पास नागपुर आया था, वह कुछ ही दिनों पूर्व यहाँ से बम्बई जा चुका था। फिर भी मैंने हिम्मत की और नौकरी ढूँढ़ने लगा....तभी आफिस से 'रीडायरेक्ट' किया हुआ माँ का पत्र मिला; जिसमें समाचार था कि बहन की शादी बूढ़े से हो रही है !....मैं फिर यहाँ रुक न सका। सीधा जबलपुर जाकर

मैंने सबका विरोध कर वह शादी रुकवा दी....फिर वहीं एक अखबार में मैंने नौकरी कर ली। जैसे-तैसे वह नौकरी निभा रहा था कि माँ की मृत्यु हो गई। फिर मुझसे जबलपुर नहीं रहा गया। बहन को लेकर नागपुर आ गया।' विक्रम ने उदासी भरे स्वर में अपनी कथा सुनाई।

'आप ठहरे कहाँ हैं ?' मोहन ने पूछा।

'अभी तो मैं धर्मशाला में ही ठहरा हूँ, परन्तु अब उसे भी खाली करना पड़ेगा, इसलिये मकान ढूँढ़ता फिर रहा था कि तुम मिल गए। कहीं कोई मकान, कमरा खाली हो तो....'

'अरे कैसी बातें करते हैं आप ?' मोहन ने बात काटते हुए कहा। 'मेरा तो अच्छा खासा मकान है। वहीं चलकर रहिए न, फिर मकान-वकान बाद में आराम से ढूँढ़ते रहना।'

'नहीं भाई, मैं तुम लोगों को तकलीफ नहीं देना चाहता।' विक्रम ने कहा।

इसमें तकलीफ की क्या बात है ? आपने मुझपर इतने अहसान किये हैं। क्या मैं आपके लिए इतना भी नहीं कर सकता ?' मोहन ने कहा।

'मैंने समझा नहीं। मैंने तुम पर अहसान किये ?' विक्रम ने प्रश्न किया।

'अरे भाई, आप तो जल्दी भूल जाते हैं। आप जब मेरे गहनों का पार्सल घर लाए तो मेरी माँ की आपसे बात-चीत हुई थी न ?'

'हाँ हुई थी।'

'आपने मेरी प्रशंसा के पुल बाँध दिये कि मैंने एक लड़की की इज्जत बचाई है और मैं कायर नहीं हूँ और माँ-बहन की याद करके दुःखी होता हूँ। आपकी बातों ने माँ पर जादू का असर कर दिया।'

'अच्छा ?'

'बस उन बातों से मेरी माँ पिघल गई। ममत्व जाग उठा।

वह मुझे देखने के लिए आकुल रहने लगी। पिता जी का मन भी बदलने लगा। कुछ दिन बाद माँ बीमार पड़ गईं। पिता जी ने मुझे पत्र लिखा। मैं तत्काल यहाँ पहुँच गया। अब एक महीने से मैं यहीं हूँ।'

'और इनिट ?' विक्रम ने पूछा।

'माँ की तबीयत जरा ठीक हो जाए तो उसे भी जाकर ले आऊँ। माँ उसको बहुत देखना चाहती है।'

'चलो अच्छा हुआ, तुम्हारा तो अब ठीक-ठाक हो गया।' विक्रम ने कहा।

'जो कुछ भी हुआ सब आप ही के कारण।' चाय समाप्त करते हुए मोहन ने कहा, 'अब धर्मशाला चलकर सामान उठवा लावें।' मोहन ने निर्णय दिया।

'भाई पहले अपने घरवालों से तो पूछ लो।'

'आजकल मेरे घर में खूब चल रही है। मेरे किसी काम से घर वाले नाराज नहीं होंगे। आप चलिये तो।' मोहन ने हठ किया।

'मेरा मन नहीं मान रहा है। बिना कहे सुने सामान लेकर पहुँचना ठीक नहीं।' विक्रम ने कहा।

'देखिये, मैं सदा से आपकी इज्जत करता आया हूँ। आपको अपने से बड़ा मानता आया हूँ। आपने मेरे दुखी जीवन को सुखी बनाया है तो क्या मैं आपकी इतनी सेवा करने लायक भी नहीं हूँ।' मोहन का कंठ गीला हो गया।

'अरे मोहन, तुम उदास हो गए। अच्छा चलो तुम्हारी ही सही। चलो धर्मशाला चलकर सामान ले आएँ। नलू भी अकेली बैठी मेरा इन्तजार कर रही होगी।' विक्रम ने मुस्कुराते हुए कहा।

मोहन ने प्रसन्न होकर कहा—'चलो फिर जल्दी चलें।'

विक्रम भी खड़ा हो गया। मोहन पैसे निकालने लगा तो

विक्रम ने पहले ही आगे बढ़कर काउन्टर पर पैसे रख दिये। मोहन मना करता ही रह गया।

शाम होते न होते मोहन, विक्रम और नलू के साथ घर पहुँचा। रिक्शे से सामान उतरवा कर जैसे ही तीनों ने घर के अंदर प्रवेश किया, मोहन को माँ खाट पर बैठी-बैठी बोली—'अरे कौन लोग आए हैं।' मोहन ने बड़ी प्रसन्नता से कहा—'माँ हमारे घर मेहमान आए हैं, जरा देखो तो ?'

'हाँ....हाँ, यह पहिले भी आ चुके हैं; पर ये कौन लोग हैं। यह तो मैं उस समय पूछना ही भूल गई थी।' प्रसन्नता एवं उत्सुकता से मोहन की माँ ने पूछा।

'माँ, ये महाराष्ट्र के लोग नहीं हैं, ये यू० पी० के रहने वाले हैं।' मोहन ने उत्तर दिया।

'अच्छा ये यू० पी० के लोग हैं ?' और मोहन की माँ के चेहरे पर एक घृणा की रेखा खिंच गई। मोहन के पास ही खड़े विक्रम से घृणा की वह रेखा छिप नहीं सकी। वह समझ गया कि मोहन की माँ को महाराष्ट्र के लोगों को छोड़कर दूसरे भाषा-भाषी शायद पसंद नहीं हैं। मोहन ने जब माँ के चेहरे पर घृणा की रेखा देखी तो वह एकदम विक्रम की ओर मुड़कर बोला—'चलिये आपको कमरा दिखा दूँ।'

'अच्छा' कहकर विक्रम मोहन के पीछे-पीछे चल पड़ा। नलू भी विक्रम के पीछे चल दी। तीनों को जाता देख मोहन की माँ मुँह बिचकाकर सुपारी काटने लगी। मोहन की माँ के पास मोहन की बहन मालती बैठी थी। वह सब कुछ देख-समझ कर चुप बैठी रही। फिर माँ को अकेली पाकर बोली....'मेहमानों के लिए चाय बना दूँ।'

'अरे अब चाय क्या सारा खाना पकाना पड़ेगा।'

मालती को माँ का यह व्यंग अच्छा नहीं लगा। जब पहली बार विक्रम उनके घर आया था, तब उसने बहुत चाहा था कि

विक्रम उसका पकाया खाना खाकर जाए, पर वह माना नहीं। अब जब विक्रम उन्हीं के घर में आ गया था तो वह चाह रही थी कि माँ खुशी-खुशी हाँ कर दे, जिससे वह बढ़िया खाना पका सके। परन्तु अब माँ का रूखा व्यवहार देखकर उसे सादा खाना पकाना पड़ेगा और जब वह विक्रम को सादा खाना परोसेगी तो उसका सिर नीचा हो जाएगा। यह सोचकर उसका मन उदास हो गया।

मालती को चुप देखकर मोहन की माँ ने उसे रसोई में जाकर काम शुरू करने की आज्ञा दी। मालती उदास मन लिए चली गई।

जब से विक्रम ने मोहन की माँ के चेहरे पर वह रेखा देखी, उसको बहुत बुरा लग रहा था। वह मन ही मन अपने आपको कोस रहा था। वह एक दिन और धर्मशाला में रह सकता था, एक दिन में उसे कोई न कोई कमरा मिल ही जाता, परन्तु अब मोहन का मन रखने के लिए उसे उस घर में रहना पड़ेगा और मोहन की माँ पर आई घृणा की वह रेखा उसे चुभती रहेगी।

—अरे यह घृणा किसलिए? केवल इसलिए कि उसकी मातृभाषा मराठी नहीं है, वह महाराष्ट्रीय नहीं है। कैसी संकीर्णता है हमारे देश में। मानवता के मार्ग में कितनी बाधाएँ हैं, कितनी दीवारें हैं। जाति की दीवार, धर्म की दीवार, भाषा की दीवार, धन की दीवार....और इन दीवारों से घिरी सहज मानवता सिसक रही है, सरल स्नेह भाव इन दीवारों की चहार-दीवारी में कैद होकर तड़प रहा है। इन दीवारों से घिरी मानवता के प्राण घुटन अनुभव कर रहे हैं। दीवारों के बीच वायु गंदी हो रही है; परन्तु संकीर्णता की ये दीवारें ऊँची, और ऊँची होती जा रही हैं।

क्या वह इसलिए बुरा है कि उसकी मातृभाषा मराठी नहीं है, कि वह किसी महाराष्ट्रीय के घर में उत्पन्न नहीं हुआ है।

इन संकीर्णताओं से घिरे हुए व्यक्ति नहीं सोचते कि किसी स्थान या जाति में पैदा होना क्या किसी के बस की बात है। मोहन की माँ के बस में था कि वह महाराष्ट्रीय के घर में उत्पन्न हुई या उसके बस में था कि वह हिन्दी भाषी के घर उत्पन्न हुआ!.... और ये भाषा, जाति, स्थान के बंधन क्या मनुष्य के बनाए हुए नहीं हैं? अन्ध धार्मिक रीतियों की तरह क्या इनमें भी जंग नहीं लग गया। फिर भी समाज और जाति के ठेकेदार इस मुर्दे को गले से लगाए हुए हैं। संकीर्णता को छोड़कर वह स्वस्थ वायुमंडल में आकर शुद्ध वायु का सेवन करना नहीं चाहते। वह भाई को भाई नहीं समझना चाहते। एक देश के होकर भी देश की एकता की भावना उनके लिए गौण है। कैसे हैं ये लोग? ये क्यों नहीं सोचते कि हम पहले मनुष्य हैं उसके बाद और कुछ। दूसरे मनुष्य भी हमारी ही तरह मनुष्य हैं और प्रेम तथा स्नेह के उतने ही अधिकारी हैं, जितने हमारे अपने भाई? कम-से-कम इतना तो सोचें कि हम सब भारतीय हैं।....हम भारतीय पहले हैं, महाराष्ट्रियन, मद्रासी, बंगाली या कुछ और बाद में हैं। किन्तु नहीं, वे पहले यही पूछेंगे कि तुम उनकी जाति के हो या नहीं, उनके धर्म के हो या नहीं, उनकी भाषा बोलने वाले हो या नहीं,... और फिर इस आधार पर उसे कितने सेर, कितने छटाँक या कितने तोले-माशे प्यार किया जाए, इसका निर्णय करेंगे। आज प्यार भी इन सीमाओं में बाँधकर बाजार की क्रय-विक्रय की वस्तु बना दिया गया है।

उसका मन कड़ुवाहट से भर गया। उसकी इच्छा हुई कि इस घुटे हुए और संकीर्ण वातावरण से निकल भागे।

'चाय।'

उसकी विचार-शृङ्खला को इस एक शब्द ने विशृङ्खलित करके रख दिया। उसने सिर उठाकर देखा, मालती चाय का प्याला हाथ में लेकर खड़ी थी। उसे लगा, मालती शायद देर से खड़ी

थी और वह अपने विचारों में न जाने कब से खोया हुआ था। उसने चाहा की वह चीख-चीखकर मालती से कहे कि ऐसे संकीर्ण लोगों के घर की चाय क्या, पानी भी उसे नहीं पीना है, परन्तु उसे तुरंत ध्यान आया कि वह उनके घर मेहमान है और फिर मालती की माँ की घृणा के लिये मालती से कड़वी बात क्यों कहे ?

उसने मुस्कराने की कोशिश करते हुए कहा—'अरे इसकी क्या जरूरत थी। हम लोगों ने तो अभी थोड़ी देर पहिले ही चाय पी थी।'

मालती ने कुछ नहीं कहा, बस मुस्करा दी और कप देकर चल दी।

विक्रम जब सुबह सोकर उठा तो उसका दिमाग कल की घटना से उत्पन्न चिन्ताओं से मुक्त नहीं था। वह जीवन के इसी पहलू पर विचार करता अपनी खाट पर आँखें खोले लेटा था कि नलू आ गई। बोली....'भैया आज सोते ही रहोगे क्या ?

'नहीं तो नलू, सो थोड़े ही रहा हूँ। बस यूँ ही लेटा हूँ।'

'तुम अखबार के दफ्तर जाने वाले थे न ?'

'अरे हाँ! ले अभी तैयार हुआ जाता हूँ।' कहता हुआ विक्रम उठ बैठा। उसकी दृष्टि नलू के मुख पर पड़ी, वह उदास थी। उसके मुख पर ताजगी की जगह थकान, निराशा और उदासी साफ झलक रही थी। नलू का वह रूप देखकर विक्रम अंदर ही अंदर तड़प गया। वह भी कैसा आदमी है कि जीवन में एक छोटी बहन को सुखी नहीं रख सकता। नलू को खुश करने के लिए विक्रम बोला....'मुझे जल्दी से नौकरी मिल जाए तो फिर हम एक छोटा-सा घर ले लेंगे और मैं तुझे कालेज में दाखिल करा दूँगा। ठीक है ना ?'

नलू मुस्कराकर बोली....'पहले मुँह-हाथ तो धो लो भैया। फिर किले बनाते रहना।'

विक्रम ने कहा....'बड़ी शरीर हो गई है।' और उसके पीछे चल पड़ा।

नहा-धोकर बिना मोहन को बताए जब विक्रम घर से निकला तो उसने तै कर लिया था कि वह पहले किसी अखबार के दफ्तर में जायेगा। थोड़ी दूर चलने पर उसे आभास हुआ कि शायद वह गलत रास्ते पर आ गया है। उसके समीप ही एक सज्जन जा रहे थे। उसके पास जाकर कहा....'भाई साहब जरा सुनियेगा।'

उन्होंने मुड़कर पूछा—'तुमने बुलाया है मेरे को करके ?'

विक्रम इस अटपटी भाषा से एकदम घबरा गया। फिर कुछ हिम्मत करके बोला—'जी हाँ, आप ही को थोड़ा कष्ट देना था। क्या काटन मार्केट यही रास्ता जाता है ?'

'हाँ' उन्होंने कहा और बिना विक्रम की ओर देखे चल पड़े।

विक्रम दो-चार कदम और आगे निकला तो एक रिक्शे-वाले ने रुककर कहा—'रिक्षा होना बाबू।'

'चलो' विक्रम ने कहा।

'हाँ। कहाँ जाते ?'

'काटन मार्केट।'

'बारी आने लेता।'

'बारह आने ! तुम लोगों के तो खूब भाव बढ़ गए हैं।' विक्रम ने कहा।

'ठीक से बोलना बाबू मेरे कू तुम ऐसीच सोचते होंगे क्या ?'

'नहीं, नहीं, आप बहुत अच्छे आदमी हैं हमें आपके रिक्शे में नहीं जाना है, हम पैदल ही चले जाएँगे।' विक्रम ने व्यंग से कहा, जिसे रिक्शे वाला कुछ समझ नहीं सका। वह बोला....

'देखो बाबू, तुम सोचते होगे कि भलताइच कोई है, पण मैं बोलता की नई, मेरे कू बोनी करने कू होना, ठीक-ठीक बताओ कितना देते तो !'

'हम चार आने से ज्यादा कुछ नहीं देंगे, चलना है तो चलो।'

'चलेगा' रिक्शेवाले ने कहा।

'विक्रम ने आश्चर्य से रिक्शेवाले की ओर देखा, कहाँ तो वह बारह आने माँग रहा था और कहाँ चार आने में मान गया। विक्रम रिक्शे पर चढ़ गया। विक्रम को नागपुर की हिन्दी पर अचरज हो रहा था। यहाँ के लोग कैसी भाषा बोलते हैं। इस भाषा को हिन्दी कहा जाय या मराठी का शब्दशः अनुवाद कहा जाय—समझ में नहीं आता। वह सज्जन उसी प्रकार की बात बोल गए और रिक्शेवाला भी उसी प्रकार बोल रहा है।

'बाबू तुम बोलते होंगे की नई रेक्षावाला ऐसाइच है पण हम मस्त बंडल नहीं मारता तो तुम हमारे रेक्षा पर बैठताइच नहीं।' रिक्शेवाले ने विक्रम से कहा। विक्रम रिक्शेवाले की बचकानी बात पर हँसकर बोला—'तुम क्या कमाते हो?'

'अपन कू क्या? अपना इनकम बोले तो सावगीब लोगों को मस्त चड़ा-गिढ़ा के दो-तीन रुपया पाकेट में डालना। रेक्षा मालिक साला एक-देड रुपया लेता उससे।'

'तुम कहाँ रहते-खाते हो?' विक्रम ने पूछा।

'रहने-खाने कू क्या? एक सिंगल-गिंगल पी के चिवड़ा खाना और मस्त रेक्षा में सोना—बाबू काटन मार्केट में कहाँ कू उतरने को होना।'

'हमको बड़े अखबार के दफ्तर में जाना हैं।'

'समझा, समझा, दफ्तर के अंदरइच ले जाता, तुम मस्त बैठे जाओ और देखते जाओ।'

फिर रिक्शेवाला कभी घंटी बजाता, कभी मुँह से ही हिस-हिस करता तेजी से चल पड़ा।

देखते ही देखते रिक्शा अखबार दफ्तर के सामने पहुँच गया।

उस दिन विक्रम नागपुर से अखबार के सब दफ्तरों में चक्कर

लगा आया, परन्तु उसे कहीं भी आशाजनक उत्तर नहीं मिला। शाम को थका-माँदा, भूखा-प्यासा, निराश मन लिए घर पहुँचा तो मोहन बरस पड़ा....'आपने तो कमाल कर दिया। बिना बताए पता नहीं कहाँ चले गए।'

मैंने आपकी नौकरी घाट रोड पर नागपुर आयल कंपनी में ठीक कर दी है और मैं दो अखबारों के दफ्तर के लिए रिपोर्टर बन गया हूँ।

'अरे इतनी जल्दी कैसे कर लिया यह सब ?'

'आजकल नौकरी बिना जान-पहचान के मिलती है क्या ? बड़ों-बड़ों से जान-पहचान हो तो नौकरी मिलती है, नहीं तो बस।'

'हाँ बात तो ठीक कहते हैं। मैं तो दिन भर घूमता रहा और लोग टरकाते रहे।'

'अरे नौकरी माँगी नहीं जाती, ली जाती है। आज सब जगह खाली जगहों को जरूरतमन्द लोगों से नहीं भरा जाता, परन्तु व्यक्ति विशेष के लिये स्थान बनाये जाते हैं।' और मोहन ठहाका मारकर हँसने लगा। विक्रम ने भी साथ दिया।

विक्रम वहीं पास पड़ी खाट पर थकान उतारने के लिये बैठ गया।'

'माँडी घसने आऊँ क्या ?' 'मोलकरिन' बाई ने बाहर से ही आवाज़ लगाई। उत्तर में मालती ने रसोई से कहा—'ठहर कर आ बाई, अभी सबने खाना नहीं खाया है।' मालती का वाक्य सुनते ही मोहन बोला—'चलो मुँह-हाथ धोकर खाना खा लो, बाकी सबने खा लिया है।'

विक्रम झटपट उठकर हाथ-पैर धोकर रसोई की ओर चल दिया। परन्तु रसोई में अकेले ही प्रवेश करने से हिचक हो रही थी कि मालती बोली—'आज बहुत देर कर दी आपने।'

'माफ करना मालती बहन, तुम्हें कष्ट हुआ।' विक्रम ने मृदु

स्वर में कहा। मालती कुछ नहीं बोली। वह चुपचाप खाना परोसने लगी। 'वहन' शब्द उसे कुछ अजीब लगा।

नौकरी मिलने के तीन दिन बाद विक्रम ने सीताबर्डी के टेकड़ी रोड पर एक कमरा किराये पर ले लिया। नलू को लेकर अलग हो गया। एक ही दिन में विक्रम ने घर चलाने के लिये आवश्यक सामग्री जुटा दी। विक्रम के जाने के आधे घण्टे बाद एक महिला ने घर में प्रवेश कर कहा....'तुम लोग इस घर में रहने कू आए क्या ?'

'जी हां।' नलू ने उत्तर दिया।

'तुम्हारे साथ तुम्हारा घर वाला है ना, कहाँ काम करते हैं ?'

'मेरे साथ तो मेरा बड़ा भाई हैं।' आश्चर्यचकित नलू ने कहा।'

'ऐसा क्या !' कहकर वह महिला चुप हो गयी। नलू भी चुप रही। वह महिला उठकर चली गयी। नलू को उसका व्यवहार पसन्द नहीं आया। यहाँ सब लोग यही सोच रहें हैं कि विक्रम उसका पति हैं। उसके जी में आया कि वह हर घर में जाकर कहे कि उसके साथ उसका भाई है, जिससे यह अनपढ़ पड़ोसिनें उसके कानों में ऐसी उलटी-सीधी बातें न डालें। यह लोग पति-पत्नी के रिश्ते को छोड़कर दूसरा कोई रिश्ता ही नहीं पहचानते शायद। जैसे यह किसी की बहन नहीं हैं, किसी की माँ नही हैं....फूहड़ कहीं की। उसने तय कर लिया कि कल जब भैया काम पर जाने के लिये निकलेंगे, तब वह घर से बाहर निकल कर जोर से भैया को आवाज लगाकर कहेगी कि घर लौटते समय वह चीनी लाना न भूलें। जिससे गली-मोहल्ले की औरतों को मालूम हो जाये कि वह अपने भैया के साथ इस कमरे में रहने आई हैं। परन्तु उसे मालूम है कि भैया को जोर से बुलाना बिलकुल पसन्द नहीं था। अगर वह इस प्रकार घर से निकलकर जोर से आवाज देगी तो भैया जरूर नाराज होंगे।

'भाजी-गीजी होना क्या ?' भाजीवाली ने आवाज लगाकर नलू का ध्यान भंग कर दिया। उसे याद आ गया कि भैया भाजी खरीद कर नहीं लाये हैं। परन्तु क्या भाजी खरीद कर फिजूलखर्ची ठीक है। रोटी तो वह दाल के साथ भी खा सकते हैं। फिर उसे याद आया कि नागपुर में आने के बाद वह पहली-बार खाना पकायेगी तो क्या यह ठीक है कि वह भैया के सामने दाल-रोटी रखे ? नहीं, उसने तय किया कि वह भाजी खरीद कर खूब बढ़िया खाना पकायेगी। भाजीवाली ने पूछा....

'क्या, तुम यहाँ नई आया।'

'हाँ', नलू ने छोटा-सा उत्तर दिया।'

'तुम्हारा साथ कौन है ?' उसने पूछा।

'मेरे बड़े भाई हैं।'

'भाऊ साहब काय ?' उसने कहा।

'हाँ' और नलू आलू तुलवाने लगी। नलू और भाजीवाली की बातचीत अड़ोस-पड़ोस के कुछ बच्चों और महिलाओं ने सुन ली, नलू मन ही मन खुश हुई। उसे मालूम था कि जितनी औरतों ने उसकी बात सुनी है, उससे सारे मोहल्ले की औरतों को मालूम हो जायेगा।

भाजी खरीदने के बाद नलू कमरे को ठीक करने और खाना पकाने में लग गयी।

दोपहर को जब विक्रम घर लौटा तो उसने नलू के हाथ में एक फार्म पकड़ाते हुए कहा—'इसे भर देना। मैं तुझे आदर्श कालेज में दाखिल कर रहा हूँ, उसी कालेज के फर्स्ट इयर में मोहन का छोटा भाई अखिल पढ़ रहा है।

'पर भैया मुझे पढ़ाने के लिये पैसे कहाँ से आयेंगे ?'

'उसकी तू चिन्ता मत कर। हम दाल-रोटी खाकर दिन काट लेगें, पर मैं तुझे बी० टी० तक जरूर पढ़ाऊँगा केवल तीन साल की बात है। जैसे-तैसे दिन कट ही जायेंगे।' विक्रम कहकर मुँह

हाथ धोने लगा। नलू फार्म उलट-पुलट कर देखने लगी। मुँह-हाथ धोने के बाद विक्रम बोला—'अब अपने दिमाग से शादी की बात बिलकुल निकाल दे। तू जब बी० ए०, बी० टी० कर सकेगी तभी सोचूँगा तेरी शादी के बारे में।'

फिर कुछ गंभीर होकर कहा उसने, 'पर एक बात का ध्यान रखना नलू, हम गरीब लोग हैं। हमारे सिर पर माता-पिता भी नहीं हैं, इसलिये हम दोनों को खूब सोच-समझकर कदम रखना है। समझी ना!'

इस वाक्य की गम्भीरता को बिना समझे नलू ने 'हाँ' कर दिया!

विक्रम खाना खाकर चला गया; परन्तु नलू अपनी खुशी में जैसे खो गयी थी। वह बहुत पढ़ना चाहती थी, परन्तु माँ सदा शादी-शादी की रट लगाये रही। अब वह खूब मन लगाकर पढ़ेगी। बी० ए०, बी० टी० पास करेगी। फिर भैया को राज़ी कर नौकरी करेगी। डेढ़-दो सौ की नौकरी करके अपने घर से गरीबी को दूर भगायेगी।'

... और जब भैया शादी करने को कहेंगे तो साफ इन्कार कर दूँगी। शादी करने से होता क्या है, जीवन भर नौकर जैसा खाना पकाओ, कपड़े धोओ, बच्चे पालो, दिन-रात घर की चक्की में पिसते जाओ, मुँह से उफ तक न निकालो। पीहर से तीज-त्योहार में कुछ न आया तो ताने सुनो, अपने पास पैसे नहीं जो समय-समय पर ससुराल वालों के मुँह पर मार कर उनको चुप किया जा सके। शादी के बाद ऐसी दयनीय दशा हो जाती है कि बस पूछो मत। अगर किसी अभागिन को पीपल वाली गली जैसा बूढ़ा दूल्हा मिल जाय और वह दूल्हा दो-चार साल में चल बसे तब तो और भी दुर्गति हो जाती है बेचारी लड़की की। कहने को नारी को कोमल कहते हैं, पर ससुराल वाले इतना दुःख देते हैं कि न तो जीते बनता है और न मरा जाता है। इससे यही अच्छा है

कि लड़कियाँ पढ़-लिखकर नौकरी करें। आर्थिक क्षेत्र में स्वतंत्र हो जायें। आदमी अपने आपको इतना ऊँचा क्यों समझता है, केवल इसलिये कि उसके हाथों में पैसा कमाने की शक्ति है और नारी को उसके सुख की ओर उन्हीं पैसों के लिये ताकना पड़ता है!

....वह दिन कब आयेगा जब मेरी पढ़ाई पूरी होगी और मैं नौकरी करने लगूँगी।

इस विचार ने नलू को इतना गुदगुदाया कि वह रोटी खाना भूल गयी और वहीं जमीन पर लेट कर सो गयी। उसे कई दिनों के बाद प्रसन्नता ने और भविष्य की आशा ने थपथपा कर सुलाया था।

× × ×

विक्रम और नलू की जिन्दगी एक लीक पर चल पड़ी। बिक्रम खा-पी दफ्तर चला जाता तो नलू कालेज चली जाती। शाम को फिर खाना खा-पीकर दोनों लिखने-पढ़ने लगते। एक दिन इतवार को बिक्रम को दफ्तर जाना पड़ गया, नलू खाना पकाकर इन्तजार करने लगी, जैसे-जैसे समय बीतने लगा उससे कमरे में नहीं बैठा गया। वह कमरे के दरवाजे पर आकर बैठ गयी। सामने के घर से एक सोलह-अठारह वर्ष की लड़की उसकी ओर देखकर मुस्कुराई। नलू भी उत्तर में मुस्करा दी। फिर नलू ने इशारे से उसे बुलाया। वह लड़की इधर-उधर देखकर जैसे चोरी-चोरी नलू के पास आई। नलू से अन्दर चलने के लिये इशारा करके कमरे में चली गयी। नलू कमरे में जाकर बोली—'तुम्हारा क्या नाम है?'

'सुमन' उत्तर मिला।

'तुम डर-डरकर मेरे पास क्यों आई?'

'क्योंकि गली-मोहल्ले की औरतें तुमको और तुम्हारे भाई को बुरा समझती हैं।'

'क्यों, हमने ऐसा क्या बुरा काम किया है ?' नलू भौंहें सिकोड़ कर बोली।

लड़की चुप रही। फिर कुछ बाद बोली—'तुम लोग मराठी नहीं बोलते न, इसीलिये।'

'अच्छा !' नलू ने कहा।

'और....' सुमन कुछ बोलते-बोलते चुप हो गई।

'और क्या ?' नलू ने पूछा।

'तुम लड़कों के कालेज में जाती हो, करके।'

'वहाँ तो बहुत सी महाराष्ट्रियन लड़कियाँ भी जाती हैं, तो क्या वे भी बुरी हैं ?'

'मेरे को तो कुछ मालूम नहीं। पर कहते हैं, वह कालेज अच्छा नहीं है।' सुमन ने कहा।

'अच्छा क्या बुरा है उस कालेज में ?' नलू ने पूछा।

सुमन ने उसकी बात का उत्तर न देकर पूछा—

'तुम वीमेन्स कालेज में भरती क्यों नहीं हुई ?'

'विमेन्स कालेज तैलँगखेली में है। बस का कितना खर्च आयेगा ? फिर मैं सुबह-शाम खाना थोड़े ही पका सकूँगी। सारा समय तो बस के चक्कर में खत्म हो जायगा। सुमन, हम लोग कोई अमीर नहीं हैं। हमें जैसे-तैसे गुजारा करना है, सो हम कर रहे हैं। आर्ट्स कालेज पास में हैं। वहीं ठीक है। मैं चार महीने से पढ़ रही हूँ। बहुत अच्छी पढ़ाई होती है। मुझे तो कोई बुराई वहाँ दिखती नहीं।'

'अच्छा।' खुश होकर सुमन ने कहा। मैं भी आई (मराठी भाषा में माँ को कहते हैं) से कहूँगी कि मुझे भी इसी कालेज में भर्ती कर दो। मैंने मैट्रिक पास कर लिया है, पर हम लोग विमेन्स कालेज का खर्च नहीं उठा सकते। इसलिये मेरी पढ़ाई बन्द है।'

'पर अगर तुमने मेरे बारे में बात की तो तुम्हारी माँ नाराज नहीं होगी ?' नलू ने पूछा।

'हाँ, बहुत नाराज होगी।' सुमन ने कहा।

'....' नलू को बहुत बुरा लगा। वह चुप रही !

'अच्छा मैं जाता हूँ।' और हाथ जोड़ कर सुमन चली गई।

नलू विचारों में डूब गई। यह दुनियाँ भी कैसी है, किसी करवट चैन से बैठने नहीं देती। हम चाहे अच्छे हैं या बुरे हैं; किसी का क्या लेते हैं ? अपना कमाते हैं, अपना खाते हैं। न किसी के लेने में, और न किसी के देने में। फिर भी मोहल्ले-वालों को चैन नहीं। न भैया किसी की ओर आँखें उठा कर देखते हैं और न मैं आंख उठाकर देखती हूँ। फिर भी हम दोनों इन मोहल्ले वालों की आँखों में खटकते हैं।

उसके जी में आया कि वह भैया से कहकर घर बदलवा ले। परन्तु....

इस 'परन्तु' ने उसके विचारों की गति में बाधा डाली।

इतना सस्ता घर कहाँ मिलेगा ? यह घर भैया के दफ्तर के भी पास है और मेरे कालेज के भी। और फिर आजकल अनजाने ही भैया रोज हनुमान जी के दर्शन करने लगे हैं। सो वह भी छूट जायेगा। अगर हम मकान बदल भी लें तो क्या वह नये मोहल्ले-वाले इसी तरह की बात नहीं करेंगे ?

....नहीं हमें इसी मोहल्ले में रहकर इन लोगों को यह दिखाना है कि हम दोनों भाई-बहन बुरे नहीं हैं। उसने तय कर लिया कि वह इस मोहल्ले के किसी से नहीं बोलूँगी, सुमन से भी नहीं। अगर सुमन देखकर कभी मुस्करा देगी तो वह भी मुस्करा कर जल्दी से चली आयेगी अपने घर में। भैया की तो किसी से मिलने-जुलने की बात ही नहीं उठती। वह सुबह घर से निकल जाते हैं तो शाम को लौटते हैं। फिर चाय-पानी के बाद ट्यूशन पढ़ाने जाते हैं।

उनसे कई बार कहा कि इतनी मेहनत शरीर के लिए ठीक नहीं, पर वह तो जैसे कमाने में लगे हैं। बस, मुझे इतनी तसल्ली है

कि समय पर खाना खा लेते हैं। रात को समय पर सो जाते हैं।

फिर उसे याद आया कि १९५० में वह बी० ए० पास कर लेगी, १९५१ में बी० टी० हो जायेगी। उस समय तक भैया को भी अच्छी नौकरी मिल जायेगी। फिर वह भी नौकरी करेगी। भैया को ट्यूशन पढ़ाने नहीं देगी और....

विक्रम ने घर में प्रवेश किया—'क्यों नलू, तूने अभी तक खाना नहीं खाया ?'

'नहीं भैया।'

'चल, जल्दी से परोस खाना, भूख लग रही है।'

और दोनों खाना खाने बैठ गये।

× × ×

'अरे दीदी, ओ दीदी' चिल्लाते हुए अखिल ने घर में प्रवेश किया।

'कुछ बोल भी कि दीदी....दीदी, जपता जायेगा।' मुँह चिढ़ाती हुई नलू बोली।

'दीदी, मोहन भाऊ और मालती ताई ने तुमको और भैया को रात के खाने पर बुलाया है।'

'आखिल, तेरा दिमाग तो ठीक है ? आज लक्ष्मी-पूजन है, हम अपना घर बन्द करके कैसे चले जायें। मोहन भाऊ से कहना कि हम फिर कभी आ जायेंगे।' नलू ने उत्तर दिया।

अच्छा तो दीदी मैं ही आज तुम्हारे घर में खाना खालूँ ?' अखिल खाट पर बैठता हुआ बोला।

'तुम्हारी आई नाराज हो जायगी, तुम घर ही जाकर खाना खा लो।' नलू ने कहा। उसे मालूम था कि अखिल की माँ उसे बहुत चाहती थी और प्रायः दोनों एक ही थाली में खाना खाते थे।

विक्रम से और चुप न रहा गया। बोला, 'बेचारे को क्यों भगा रही हो। खाना खाने आया है तो खा लेने दो ना।'

'ना भैया आज के दिन—'

बात काटते हुए विक्रम ने कहा—'अच्छा आज के दिन नहीं तो भैया दूज के दिन तो बुला सकती हो।'

'हाँ दीदी, मैं भैया दूज के दिन यहीं खाना खाऊँगा।' अखिल ने कहा।

अच्छा मान गये, बस? अब तो घर चला जा।' नलू ने कहा। ।

'ये चला...लो....अभी....' और अखिल हँसता हुआ कमरे से निकल गया। नलू और विक्रम भी हँस पड़े। जैसे ही अखिल चला गया। विक्रम बोला....'लड़का अच्छा है।'

'दोदी....दीदी कहते-कहते तो इसकी जबान ही नहीं थकती। कालेज में दस बार मिलता है कभी लाइब्रेरी में, कभी एक क्लास से दूसरी क्लास में जाते हुए और जब-जब मिलता है तो दीदी.... दीदी कहता जाता है।' नलू ने कहा....

'तेरे लिए अच्छा है, नहीं तो लड़कों के कालेज में पढ़ना जरा मुश्किल होता।'

'हाँ, अखिल का मुझे बड़ा सहारा है।' नलू ने कहा!

दो दिन के बाद भैया-दूज आयी। उस दिन सुबह ही अखिल पहुँच गया। उसको देखते ही नलू खूब हँसी और अखिल को चिढ़ाती हुई बोली....'अरे सुबह-सुबह आ धमका, दूज का टीका तो शाम को लगता है।'

मुसकराते हुए अखिल बोला....'तो मैं यहीं बैठकर शाम की इंतजार करूँगा।'

'अखिल का उत्तर सुन विक्रम हँस कर बोला....'अच्छा चलो आज यहीं पर दोनों समय का खाना खा लेना ओर शाम को टीका लगवा कर घर लौटना।'

'अखिल को तसल्ली हो गयी। वह प्रसन्न चित्त बैठ कर अखबार देखने लगा और विक्रम नजर बचा कर जबान निकाल

कर नलू को चिढ़ाने लगा। विक्रम कुछ देर बाद नहाने चला गया। नलू खाना पकाने लगी।

भैया दूज के दिन से अखिल का विक्रम के घर में आना-जाना बहुत बढ़ गया था। वह प्रायः सुबह आकर नलू को कालेज ले जाता और फिर शाम को साथ लौटता। पढ़ाई का सारा काम वह नलू के ही घर करता।

जैसे-तैसे दिन बीतने लगे, अखिल बाजार भी कर लाता। कुछ कपड़े आदि खरीदने हों तो नलू के साथ चला जाता। अक्सर मालती भी बाजार करने में साथ देती। विक्रम को घर की फिक्र से बिलकुल छुट्टी मिल गयी। अखिल का साथ पाकर नलू को गली-मोहल्ले के लोगों से मिलने-जुलने की भी इच्छा न होती। वह मोहल्ले में रह कर भी जैसे मोहल्ले से बहुत दूर थी।

खुशी के दिन न जाने कहाँ भागते, दौड़ते चले जाते हैं और गायब हो जाते हैं, उसी प्रकार नलू—अखिल के दिन भी निकलते चले गये और कैलेण्डर पर १९४९ के स्थान पर १९५० दिखने लगा। जैसे ही १९५० वर्ष का आरम्भ हुआ, नलू और अखिल को परीक्षा की धुन सवार हुई। दिन-रात के चौबीस घण्टों में इन दोनों के प्रायः चौदह घण्टे पढ़ाई में कटने लगे। अखिल हर तीसरे-चौथे दिन पढ़ते-पढ़ते रात को वहीं सो जाता था। विक्रम को इन दोनों की तपस्या बहुत अच्छी लगती थी।

तपस्या के दिन बीते, परीक्षा भी आकर चली गयी। फिर कुछ महीने नलू ने घर की सफाई, सीने-पिरोने में, मालती से मिलने-जुलने मे बिताये और अखिल ने आराम करने में समय काटा। परीक्षा-फल की प्रतीक्षा में एक-एक पल न कटने वाला समय बीता और अन्त में वह दिन आया जिसके लिये प्रत्येक परीक्षा दे चुकने वाला विद्यार्थी उत्सुकता से प्रतीक्षा करता है।

नलू घर पर ही परीक्षा-फल के लिये प्रतीक्षा कर रही थी

कि अखिल अखबार दफ्तर से अपना और नलू का परीक्षा-फल ज्ञात करके दौड़ा चला आया नलू के पास....

'अरे दीदी....दीदी....' चिल्लाता हुआ, अखिल नलू के घर के सामने रुक कर हाँफने लगा। नलू घर से बाहर आकर बोली 'साँस ले ले पहले।' और उत्सुकता से पूछ बैठी, 'हम दोनों पास हो गये क्या ?'

'हम दोनों सेकेण्ड डिवीजन में पास हो गये। सीविक्स में तेरे सबसे ज्यादा नम्बर हैं, इसलिये तुझे मेडल भी मिलेगा।'

प्रसन्न होकर नलू ने कहा.... 'आ अन्दर आ, चलके मुँह मीठा कर।'

नलू ने अन्दर से कटोरी में कुछ चीनी लाकर एक चुटकी चीनी अखिल के मुँह में डाल दी। अखिल ने भी एक चुटकी चीनी नलू के मुँह में डाल कर कहा....'हम दोनों की मेहनत सफल हुई।'

'भैया हमारी सफलता सुन कर खूब खुश होंगे।'

'मैं अभी भैया के दफ्तर जा रहा हूँ। फिर वहाँ से घर जाऊँगा।'

नलू कुछ कहे, उसके पहले ही अखिल उछलता-कूदता घर से निकल पड़ा।

: ४ :

जून १९५० ! कालेजों में प्रवेश प्रारम्भ हो गया। अखिल ने बी० ए० करने के लिए पुनः आर्ट्स कालेज में दाखला लिया। नलू को विक्रम बी० टी० कराना चाहता था, अतः उसे टीचर्स ट्रेनिंग कालेज में भरती कर दिया गया।

कालेज खुला तो नलू और अखिल अलग-अलग कालेज गये। नलू और अखिल को अलग-अलग अनुभूतियाँ हुईं। अखिल के लिए कुछ भी नया नहीं था। वही कालेज था, वेही प्रोफेसर, वेही सहपाठी। दो-एक प्रोफेसर अवश्य बदल गये थे; किन्तु वह कुछ ऐसी बात नहीं थी जिससे किसी प्रकार की परेशानी हो। हाँ, आनन्द अवश्य आया इससे ! प्रोफेसर मिश्रा नये थे, एकानामिक्स के प्रोफेसर होकर आए थे। उन्होंने हाजिरी लेने के लिए जैसे ही प्रथम नाम पुकारा पीछे से किसी ने 'म्याऊ'' कहकर उत्तर दिया और प्रोफेसर साहब लाल हो गये। पूरी क्लास जोर से हँस पड़ी। किसी तरह स्वयं पर काबू रखकर उन्होंने दो-एक नाम अभी और पुकारे थे कि 'फट्' से किसी ने छोटा-सा पटाखा छोड़ दिया। मिश्रा जी ने हाजिरी लेनी बन्द कर दी और 'डिसिप्लिन' पर लेक्चर देना शुरू कर दिया। सब विद्यार्थी इस तरह सौम्य बने उनका लेक्चर सुनते रहे, जैसे इसके पूर्व कुछ हुआ ही नहीं हो। और 'डिसिप्लिन' के वे सब अवतार हों।

बी० टी० कालेज नलू के लिए एक दम नया था। लड़के-लड़कियों की संख्या कम नहीं थी और सब ग्रेज्यूएट थे।

अधिकांश संख्या उन लड़के-लड़कियों की थी जो पहले से शिक्षक थे और जिन्होंने प्राइवेट बी० ए० किया था। अतः नलू ने अनुमान लगाया कि यहाँ के विद्यार्थियों में उस प्रकार की स्वच्छंदता न होगी, जैसी कि उसने इसके पूर्व कालेज में अनुभव की थी। यहाँ युवक भी थे और प्रौढ़ भी। बहुत से तो उसके विक्रम भैया से अधिक आयु के थे। चपलता जो थोड़ी वहुत थी, वह उन्हीं लड़कों में थी जो सीधे कालेज से यहाँ भरती हो गये थे। सब की मुखाकृतियों पर समय की निष्ठुरता और आर्थिक दीनता की छाप स्पष्ट दिखाई दे रही थी।

उसने सुना, प्रोफेसर चटर्जी भी इस वर्ष से यहीं आ गये हैं। इतने अपरिचितों के बीच उसे यही एक परिचित नाम सुनाई पड़ा। इस अपरिचित वातावरण में उसे पहले दिन कुछ घबराहट भो महसूस हुई; परन्तु उसने स्वयं को समझा लिया कि कुछ दिनों में सब ठीक हो जायगा। उस दिन कालेज खुलने का पहला दिन था। अतः हाजिरी लेने के बाद विद्यार्थियों को छुट्टी दे दी गई। नलू भी कक्षा से निकलकर सीधे घर आई।

शाम को अखिल नलू से मिलने आया। वह बहुत खुश था। वह विभिन्न विद्यार्थियों के बारे में तरह-तरह की बातें सुना रहा था, शर्मा ने अपना सिर घुटवा लिया है। चित्रे फ्रेंचकट दाढ़ी रखने लगा है। खान धोती कुरता पहनकर आया था....हिन्दी साहित्य समिति के मन्त्री 'राजकमल' ने बाल बढ़ाने शुरू कर दिये हैं, वह शायद सुमित्रानन्दन पन्त बनने जा रहा है।....मिस अय्यर ने बहुत बुरी तरह पाउडर लगाया था.... मिस गोगटे ने बाल कटा लिए हैं और 'बाब' कट रखने लगी है, मिस तिवारी ने उस तरह का ब्लाउज पहना था जैसी आजकल लड़के बुशर्शट पहनते है...।

नलू को अखिल की बातों में बड़ा मज़ा आ रहा था। मन

ही मन वह सोच रही थी कि बी० टी० की बजाय वह एम्० ए० करती तो कितना मजा आता। सबेरे जब वह कालेज गई थी, तो कितनी खुश थी; किन्तु लौटते समय वह एकदम उदास हो गई थी; क्यों कि उसका कोई भी जान-पहचान का नहीं था और न किसी ने उससे अच्छी तरह बात ही की थी।

बोलते-बोलते अखिल अचानक रुक गया। बोला....

'क्यों दीदी, तुम कुछ उदास लग रही हो, क्या बात है?'

'नहीं अखिल, कोई खास बात नहीं। 'नलू ने कहा।

'तो आम बात होगी।'

'हाँ, आम बात है।' नलू ने मुस्करा कर कहा।

'तो उस आम का गूदा मुझे दे दो और गुठली खुद रख लो।'....अखिल ने कहा और दोनों खिलखिला कर हँस पड़े।

इन दोनों की हँसी खत्म भी नहीं होने पाई थी कि विक्रम ने घर में प्रवेश किया और नलू के हाथ पचास रुपये के नोट रखते हुए कहा—

'ले तेरी तकदीर से मुझे ये पचास रुपये मिले हैं। इससे तू अपनी किताबें खरीद लेना।'

नलू की समझ में कुछ नहीं आया। वह एकटक भैया की ओर देखने लगी।....अखिल से रहा नहीं गया। बोला—

'पर भैया, आप को ये मिले कहाँ से?'

'भाई, मैं एक टयूशन पढ़ाता था। वह लड़का तीन साल से फेल हो रहा था। इस साल पास हो गया तो माँ-बाप खुश हो गये, बस।'

'अच्छा, अब समझी, वह चाँदी वालों का बेटा न भैया,' नलू ने कहा।

'हाँ-हाँ, वही' विक्रम ने उत्तर दिया।

'वे लोग तो बहुत कुछ दे सकते हैं। उनके एक ही तो बेटा है और तीन साल के बाद पास हुआ है, फिर भी सिर्फ

पचास रुपये में चलता कर दिया आप को ?' अखिल ने एक साँस में कहा।

'बस अब अपनी बक-बक बन्द कर दे और चुपचाप चाय पी ले।' नलू ने कहा।

'अच्छा जी, हमारी बातों को आप बक-बक समझ कर चाय बनाने चल पड़ी थीं।' अखिल ने सिर मटकाते हुए कहा।

'तो और क्या।'

'अरे दीदी, तुम मुझे जानती नहीं हो, जिस दिन जान जाओगी,... उस दिन...।' बात काटकर नलू बोली...

'बस भी कर, चाय पीनी है तो पी ले नहीं तो...।'

'नहीं दीदी, पीनी है, पीनी है, ला दे मेरा कप।'

...और तीनों चाय पीने लग गये।

× × ×

'की हाल है बादशाओं ?' छै फुट के लम्बे-चौड़े कैलाश सिंह ने अखिल के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा।

अखिल काउन्टर पर खड़ा अपनी फीस दे रहा था और कैलाश सिंह भी अपने साथियों सहित फीस देने उसी समय आया था। अखिल जानता था, कैलाश सिंह कालेज के अच्छे लड़कों में नहीं गिना जाता है; लड़कियों को छेड़ना, प्रोफेसरों को तंग करना और सीधे-सादे विद्यार्थियों से शरारत करना, यही उसका काम था। इसलिए जहाँ तक होता सीधे-सादे विद्यार्थी उसके मुँह नहीं लगते थे।

काउन्टर के अन्दर से अपनी रसीद लेते हुए अखिल ने कहा—'अच्छा हूँ दादा।'

कैलाश सिंह को विद्यार्थी, कैलाश कम और दादा अधिक कहते थे।

'और साड़ी नलिनी कैसी है वे।' कैलाश ने फिर पूछा।

'क्यों किसी को गाली देते हो दादा।' अखिल ने झुँझलाहट भरे स्वर में कहा।

'ओय-होय वर्मा, ये तो पक्का आशिक है हो। उसको गाली देना सहन नहीं कर सकता।'

'अरे यार, प्रेयसी का मामला है, कोई मजाक थोड़े ही है।' डेढ़ छँटाक के वर्मा जी ने अपनी मन भर की जीभ खोली।

'शर्म नहीं आती किसी की बहन को उसकी प्रेयसी कहते!' अखिल ने वर्मा को घुड़ककर कहा।

'अबे क्यों छिपाता है? इश्क भी लड़ाता है और बहन भी बोलता है।' यह कैलाश सिंह की आवाज थी।

'कैसी बात करते हो दादा, वो तो मेरी दीदी है।' अखिल ने कुछ निढाल होकर कहा!

'अबे छोड़ क्या दीदी-दीदी लगाया है। हमें चकमा देता है। गुलछर्रे उड़ाता है उसके साथ और....'

अखिल अपने कानों में उँगलियाँ डाल कर वहां से भाग खड़ा हुआ। वह जानता था, इन लोगों के मुँह लगने का नतीजा बुरा ही होगा। बात बढ़ जायगी और हो सकता है नौबत मारपीट तक पहुँच जाए। उसे भागता देख कैलाश सिंह और उसके साथी ठहाका मार कर हँस पड़े।

उस दिन अखिल शाम को नलू से मिलने नहीं गया। वह घर की छत पर लेटा आसमान को देख रहा था। उसके मस्तिष्क में विचार घूम रहे थे—मैं इतने दिनों में नलू से रंग रलियाँ खेलता रहा? क्या मेरा उससे मिलने का तौर तरीका ठीक नहीं था? मैंने उसको दीदी बना कर पाप किया! मेरा मन उसके बारे में साफ नहीं था?....और इन प्रश्नों से अखिल का सिर चक्कर खाने लगा। वह तड़प-तड़प कर रह गया। कई बार उसने अपनी मुट्ठी को खाट पर दे मारा। वह चाह रहा था कि वह उस गुण्डा टोली के एक-एक को उठा-उठा कर जमीन

पर पटक दे; किन्तु वह यह भी जानता था कि वह अकेला है और कुछ नहीं कर सकता। यह पहला अवसर नहीं था जब कैलाश सिंह ने किसी विद्यार्थी को अपमानित किया। इसके पूर्व भी अनेक विद्यार्थी उसके शिकार बन चुके थे।

वह उठा और बेचैनी से छत पर इधर-उधर घूमने लगा। कभी पैर पटकता, कभी खाट को इधर से उधर हटाता।

छत पर खड़खड़ाहट की आवाज सुन कर मालती काम छोड़ कर अखिल के पास चली आई। बोली, 'क्या है रे, क्यों खाट को तोड़ रहा है। दिमाग तो ठीक है!'

अखिल नीचे उतर आया और मोहन भाऊ की साइकिल ले कर बाहर निकल पड़ा।

अखिल को मालूम नहीं था कि वह कहाँ जा रहा है, परन्तु वह साइकिल चलाते हुए नलू के घर के पास से निकल कर घाट रोड होता हुआ मेडिकल कालेज और न जाने कहाँ-कहाँ का चक्कर लगाता रहा। जब बहुत थक गया तो घर वापस लौटा और आकर सीधे अपनी पलँग पर लेट गया। कुछ देर बाद उसे नींद आ गई।

× × ×

विक्रम दफ्तर से आ कर ट्यूशन पढ़ाने जा ही रहा था कि नलू बोली—'भैया मुझे किताबें खरीदनी हैं।'

'तो क्या हुआ अखिल आता ही होगा उसे साथ लेकर किताबें खरीदने चली जाना। पैसे मैंने दे ही रक्खे हैं।' बिक्रम ने कहा।

'अच्छा भैया।' कह कर नलू अपने काम में लग गयी।

विक्रम चला गया और नलू अनिल की प्रतीक्षा करने लगी। रोज वह चार, साढ़े चार बजे आ जाता था, फिर दोनों विक्रम की प्रतीक्षा करते और जैसे ही विक्रम आता तीनों चाय के साथ कुछ नाश्ता करते। परन्तु आज अखिल नहीं आया और नलू

चाह रही थी कि वह जल्दी से जल्दी आये, जिससे अँधेरा होने से पहले ही कितावें खरीद लायें। जैसे-जैसे समय निकलता जा रहा था उसे अखिल पर गुस्सा चढ़ता जा रहा था जिस दिन जरूरत है, उसी दिन नहीं आयेगा यह अखिल।

चार से पाँच बज गये। फिर छः बजे। साढ़े छः बजे तो नलू ने अखिल के आने की आशा छोड़ दी और खाना पकाने लगी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि प्रायः दो वर्ष का नित्य-नियम अखिल ने क्यों तोड़ा? वह दो साल से, गर्मी में, बरसात में रोज शाम को आता रहा है। कई बार तो उसकी तबीयत भी ठीक नहीं थी, परन्तु फिर भी वह नलू से मिले बिना घर नहीं गया। कभी नलू सोचती कि कुछ काम होगा, जिससे नहीं आया, फिर सोचती कि शायद कालेज में फँस गया होगा, क्यों कि वह चार-पाँच दिन पहले कह रहा था कि वह इस साल मराठी साहित्य परिषद् के मन्त्रि पद के लिये एलेक्शन लड़ेगा।

इन्हीं विचारों के साथ रात के आठ बज गये। विक्रम वापस आया। अखिल का न आना सुन कर उसे भी आश्चर्य हुआ; पर कुछ बोला नहीं। खाना खा-पी कर विक्रम दफ्तर के कागजों में जुट गया और नलू कालेज के काम में।

दूसरे दिन कैलाश सिंह ने अखिल को फिर घेरा, लेकिन आज कैलाश सिंह अकेला था, उसके साथ उसके जी-हजूर नहीं थे। कैलाश सिंह ने आज, कल की तरह उसे छेड़ा भी नहीं, वरन् बड़े प्यार से उसे चाय का निमंत्रण दिया। अखिल ने इनकार किया तो वह उसे अपनी कसम देकर सामने के होटल में ले गया। उसने अखिल को यह भी समझाया कि कालेज में मज़ाक का बुरा नहीं मानना चाहिए, यह सब तो चुकता ही रहता है।

चाय पीते-पीते कैलाश सिंह ने अखिल से बड़े राज़दाराना

अन्दाज़ में कहा—'क्यों अखिल, तू नलिनी को सचमुच बहन की तरह प्यार करता है क्या ?'

'तुम्हें विश्वास नहीं होता दादा ?' अखिल ने उससे पूछा।

'और नलिनी भी तुझे भाई की तरह प्यार करती है ?' कैलाश ने उसे उत्तर देने के बदले दूसरा प्रश्न किया।

'हाँ दादा, वह हमेशा मुझे भैया कहती है ?' अखिल ने कहा।

'वह तुझे बहुत प्यार करती है क्या ?'

'हाँ दादा, बहुत प्यार करती है, उतना ही, जितना मेरी बहन मुझसे प्यार करती है।'

'तू बहुत बेवकूफ है अखिल। कैलाश ने प्याले से आखरी घूँट पीते हुए कहा।

'क्यों, क्या बात है दादा ? मैंने तुम्हारा मतलब नहीं समझा।'

'अबे, वह तुझ पर मरती है; पर तू समझता नहीं।'

'नहीं दादा, मैंने कहा न, वह मुझे भैया कहती है।'

'अबे, सभी लड़कियाँ पहले भैया कहती हैं और फिर....' कैलाश सिंह हँस पड़ा....। 'अच्छा देख, तू मेरी बात की सच्चाई जानना चाहता है न, तो एक काम कर, तू उसके घर रोज जाता है न ?'

'हाँ'

'तो तीन-चार दिन उसके घर मत जा। अगर वह तुझे पूछने तेरे घर आए तो समझ लेना मेरी बात सच्ची है और नहीं तो दादा कहलाना छोड़ दूँगा।'

'लेकिन दादा....।'

'अबे लेकिन-वेकिन छोड़। इतना अच्छा 'माल' कोई दूसरा लेकर उड़ जाएगा और तू देखता रह जाएगा....फिर याद आएँगी मेरी बातें।'....और कैलाश उठ कर चल दिया।

अखिल वहीं बैठा रहा। उसके दिमाग में फिर एक तूफान उठ खड़ा हुआ। कैलाश की एक-एक बात उसके मस्तिष्क पर हथौड़े की तरह पड़ रही थी। उसने निश्चय कर लिया कि इस बात की सत्यता को वह अवश्य परखेगा। नलू के घर वह दो-तीन दिन और नहीं जाएगा।

जब अखिल दूसरे दिन भी नहीं आया तो नलू ने विक्रम से ज़िद की कि वह स्वयं साथ चल कर उसको पुस्तकें खरीद दे। विक्रम ने सोचा कि चलो, इसी बहाने नलू का मन बहल जायगा।

विक्रम और नलू शाम को घर से जल्दी ही निकल गये। विक्रम ने तय किया कि पुस्तकें खरीदने का कार्य वह जल्दी से समाप्त कर लेंगे और उसके बाद दोनों फर्स्ट शो पिक्चर चले जाएँगे। नलू इस प्रस्ताव से बहुत खुश हुई; क्योंकि रीगल टाकीज में बहुत अच्छी फिल्म चल रही थी और वह उसे देखना भी चाहती थी; परन्तु विक्रम से स्वयं यह प्रस्ताव करते उसे डर लगता था।

दोनों जब किताबों की दूकान में पहुँचे, तो नलू क्षण भर ठिठक कर रह गई। उसने विक्रम से कहा कि थोड़ी देर बाद आकर पुस्तकें खरीद लेंगे। विक्रम की समझ में कुछ नहीं आया तो नलू ने बताया कि 'साइकोलाजी' पढ़ाने वाले प्रोफेसर चटर्जी वहीं खड़े हैं और उनके सामने जाते उसे झेंप लगती है। विक्रम जोर से हँस पड़ा और नलू को लेकर वह बुक डिपो में घुस पड़ा।

प्रोफेसर चटर्जी ने जैसे ही मुड़ना चाहा तो उन्हें सामने नलिनी दिखाई दी। नलिनी ने झेंपते हुये उन्हें नमस्ते की और विक्रम से परिचित कराया। प्रोफेसर चटर्जी विक्रम से बड़े तपाक से मिले। विक्रम भी उनसे मिलकर बहुत खुश हुआ और पुस्तकों का आर्डर देते-देते उसने चटर्जी को यह भी बता दिया कि नलू किस प्रकार उन्हें देखकर बिना पुस्तकें खरीदे लौट रही थी। चटर्जी, विक्रम की बात सुन कर मुस्करा कर रह गये।

जब पुस्तकें खरीदी जा चुकीं तो विक्रम, नलू और प्रोफेसर चटर्जी साथ ही बुक डिपो से निकले।

'अच्छा मिस्टर विक्रम, अब क्या प्रोग्राम है आपका ?' दिलीप कुमार चटर्जी ने पूछा।

'जी, कोई विशेष नहीं....ये नलू बहुत दिनों से ज़िद कर रही है सिनेमा जाने के लिये !' विक्रम ने कहा।

'क्या भैया....आप हम को ज़बरदस्ती !'...नलू ने उसकी बात काट दी।

प्रोफेसर चटर्जी हँस पड़े। बोले, 'अच्छा अब समझा....तो फिर मुझे आज्ञा दीजिये।'

'आप भी चलिये न ?' विक्रम ने यूं ही कहा।

'न बाबा, आज तो हर्गिज नहीं जा सकता....जाकर इन लोगों के लिये लेसन प्रिपेयर करना है, नहीं तो ये लोग कौवे की तरह नोच डालते हैं क्लास में।' चटर्जी ने बनावटी गम्भीरता से कहा।

विक्रम ने हँस कर कहा....

'ये तो आपकी पढ़ाई की बहुत तारीफ करती है....।'

'ये झूठी तारीफ करती होंगी।' चटर्जी ने चलते हुए कहा।

'क्यों प्रोफेसर साहब, ये पढ़ने-लिखने में कैसी है ?' विक्रम ने ऐसे पूछा जैसे नलू बी० टी० में नहीं, दूसरी हिन्दी में पढ़ती है।

...और इस तरह बात घूम-फिर कर नलू पर आ गई और रीगल टाकीज़ आने तक उसी के सम्बन्ध में चलती रही। नलू कभी मुस्करा देती, कभी झेंप जाती, कभी अपने भैया को रोष भरी दृष्टि से देखकर उसे चुप रहने का इशारा करती।

थोड़ी ही देर में दोनों एक दूसरे से काफी घुल मिल गए। जब रीगल टाकीज़ आ गई तो विक्रम ने पूछा—'आप रहते कहाँ हैं ?'

'जी मैं तो वर्ली में रहता हूँ, संगम चाल में एक मकान किराये पर ले लिया है।'

'अच्छा, हम लोग भी तो वर्ली में रहते हैं, टेकडी लाइन में। आप कभी आइए न ?'

'आप बुलाएंगे तो आना अवश्य पड़ेगा....लेकिन पहले आपको मेरे घर आना पड़ेगा। देखिये रविवार की शाम की चाय आप मेरे साथ पीजिये।'

'नहीं, नहीं,' विक्रम ने कहा....'पहला न्योता हमारा है।'

'पहले-दूसरे न्योते की बात नहीं....हाँ, यदि आप मुझे अपने घर न बुलाना चाहते हों तो मेरे घर आने से इनकार कर सकते हैं।' चटर्जी ने कहा।

'नहीं....नहीं, यह बात नहीं है....अच्छा तो रविवार को आपके दर्शन करने अवश्य आयेंगे हम लोग।'

'हाँ, दर्शन शास्त्र का प्रोफेसर हूँ न, दर्शन के ही काम का हूँ।'

नलू और विक्रम हँस पड़े। चटर्जी ने अपनी साइकिल सँभाला और सवार हो गए। -

'बड़े मिलनसार हैं तेरे प्रोफेसर !' विक्रम ने नलू से कहा।

'हाँ भैया, कक्षा में भी इसी तरह सब लड़कों से घुल-मिल कर रहते हैं' नलू को चटर्जी की प्रशंसा अच्छी लगी।

'अरे बात ही बात में कितनी देर हो गई...देखो आखरी घन्टी बज रही है।' और दोनों पिक्चर हाउस में चले गए।

उस दिन जब अखिल घर पहुँचा तो उसने देखा, नलू उसके कमरे मे बैठी मालती से बातें कर रही हैं। नलू को देखते ही उसके दिमाग में कैलाश सिंह की बातें बिजली की तरह कौंध गईं।

नलू उसे देखते ही उस पर फट पड़ी।

'क्यों रे अखिल, क्या हो गया है तुझे। चार दिन हो गये,

घर आने का नाम ही नहीं लेता....मैं तेरा कितना रास्ता देखती रही।'

'सच नलू!' अखिल ने पूछा। वह वहाँ नहीं था, कैलाश सिंह के बनाए जाल में खोया हुआ था।

'सच नहीं तो क्या....और मैं ही क्या, भैया तेरा रास्ता देख रहे थे। उन्होंने आज कहा कि जाकर पता लगा कि अखिल क्यों नहीं आया।'

'अच्छा तो भैया के कहने से आई हो, अपनी इच्छा से तुम नहीं आई।' अखिल ने तनिक कड़वे स्वर में कहा।

अखिल का वाक्य नलू के हृदय को भेद गया। जिस अखिल के लिये वह चार दिन कठोर प्रतीक्षा करती रही और जिससे मिलने वह स्वयं आई, उसी ने उसका अपमान करने के लिये ये तीर जैसे शब्द कहे। वह मालती की ओर मुड़कर बोली...'अच्छा मालती, मैं चलती हूँ। नहीं तो खाना पकाने में देर हो जाएगी।'

मालती कुछ कह भी नहीं पाई थी कि नलू घर से निकल कर चल पड़ी। किन्तु मालती की आँखों से नलू के आँसू छिपे न रह सके। वह अखिल की ओर मुड़ी तो अखिल वहाँ नहीं था।

मुँह–हाथ धोकर अखिल अपने कमरे में आकर एक पुस्तक लेकर लेट गया। उसे बार-बार कैलाश सिंह की बात याद आ रही थी। नलू के जाने में भी उसे रहस्य दिखाई दिया। उसने सोचा, वह उसे नखरे दिखा रही थी। चाहती होगी, मैं उसे मनाऊँ....सच मैंने बुरा किया। उसे मनाकर रोक लेना था। बेचारी कैसी तड़प रही है मेरी याद में! रहा नहीं गया तो घर चली आई। कैलाश दादा ठीक कहते हैं....'नलू तुझे बहन की तरह प्यार नहीं करती....वह तो....' और उसका शरीर रोमांचित हो उठा। काश! वह नलू को रोक लेता और फिर....

आज इतवार है। आज विक्रम भैया घर पर होंगे। वह उनके घर कल जाएगा। विक्रम घर पर नहीं होगा और अपने हृदय के इस तूफान को वह नलू के सामने प्रकट कर देगा। नलू भी इसकी प्रतीक्षा कर रही होगी। ये लड़कियाँ ऐसी ही होती हैं, इनके मन में प्यार रहेगा किसी के प्रति; पर उसे स्वीकार नहीं करेंगी....कम से कम उस समय तक तो हर्गिज नहीं करेंगी जब तक वह आदमी ही इनके सामने झुक न जाए। और फिर एक बार झुक जाएँगी तो टूटने की हद तक झुकती चली जाएँगी! अपना अस्तित्व ही खो बैठेंगी।

बाहर किसी के पुकारने की आवाज सुनकर अखिल अपने कमरे से निकला तो उसने देखा, कैलाश सिंह मालती से अखिल का घर पूछ रहा है। उसे देखते ही वह दौड़कर उससे लिपट गया। बोला....'दादा, तुम ठीक कहते थे। बाज़ी तुम जीत गये।'

कैलाश सिंह मालती को देख रहा था। मालती कैलाश को घूरते देख लौट गई। अखिल कैलाश को अपने कमरे में ले आया और आज की पूरी कहानी उसे सुना दी।

दूसरे दिन जब अखिल नलू के घर पहुँचा तो दरवाजे पर ही उसे किसी अपरिचित स्वर के हँसने की ध्वनि सुनाई दी। वह दरवाजे पर ही रुक गया। यह स्वर प्रोफेसर चटर्जी का था। जिसे कल विक्रम भैया रात के भोजन का निमंत्रण दे आये थे।

जब इतवार को विक्रम नलू के साथ प्रोफेसर चटर्जी के घर पहुँचे, तो उन्हें यह देखकर बहुत ही आश्चर्य हुआ कि चटर्जी घर में अकेले ही रहते हैं। विक्रम का अनुमान था कि चटर्जी विवाहित होंगे, किन्तु उनका यह अनुमान मिथ्या सिद्ध हुआ। बातों ही बातों में उन्हें यह भी पता लग गया कि चटर्जी ने दिल्ली में एम्० ए० किया है और उसके पिता का दो वर्ष पूर्व देहान्त हो चुका है। वह दिल्ली सेक्रेटेरियट में कार्य करते

थे। चटर्जी जिन दिनों नौकरी ढूँढ़ रहा था, उन्हीं दिनों उनका 'हार्ट फेल' हो गया। उसके कोई भाई-बहन नहीं था और उसकी माँ का देहान्त उसी समय हो गया था, जब वह छोटा था। उसकी माता के देहान्त के बाद उसके पिता ने दूसरा विवाह नहीं किया।

चटर्जी विक्रम से छोटा था, अतः वह विक्रम को विक्रम भाई कहता और विक्रम उसे दिलीप। कुछ घन्टों की बैठक में ही विक्रम आप से तुम पर उतर आया था। सच तो यह है कि दिलीप ने ही उसे इसके लिए प्रोत्साहित किया था।

अखिल को चटर्जी की आवाज पहचानते देर नहीं लगी। उसे यह भी ज्ञान हो गया कि विक्रम घर पर ही है। विक्रम और दिलीप दोनों खाना खा रहे थे और नलिनी के जाने की जबरदस्ती हँसी उड़ा रहे थे। हँसी उड़ाने का कार्य मुख्यतः विक्रम कर रहे थे। दिलीप से जहाँ तक होता वह नलिनी का पक्ष लेता; परन्तु कभी-कभी विक्रम का भी साथ दे देता। उसे नलिनी के खीझने-रूठने में बड़ा मज़ा आ रहा था। कभी-कभी इधर-उधर की बातें भी हो जातीं, जिसमें नलिनी भी भाग ले लेती। हँसी की ये फुलझड़ियाँ अखिल के हृदय पर तप्त लोहे की लाल चिनगारियाँ-सी उड़ कर पड़ने लगीं। उसने सोचा—कैलाश सिंह ठीक ही कहता था कि यदि मैंने अवसर हाथ से जाने दिया तो कोई दूसरा इसे ले उड़ेगा....लेकिन नहीं; नलिनी मेरी है और मेरे रास्ते में जो भी आएगा मैं उससे निपट लूँगा। कुछ सोचकर वह वहाँ से लौट गया।

खाने के बाद प्रोफेसर चलने के लिए उठे तो विक्रम ने उनसे बराबर आते रहने का वायदा लेकर विदा किया। प्रोफेसर साहब भी यही चाहते थे। अतः हँसते, मुस्कराते उन्होंने वायदा दे दिया और चले गये।

प्रोफेसर साहब के जाने के बाद नलू बर्तन उठा कर ले गई और स्वयं काम में लग गई। विक्रम दफतर के काम में जुटना

चाह रहे थे; परन्तु बार-बार उसके मन में एक बात उठ रही थी प्रोफेसर साहब में अहम् का भाव बिलकुल नहीं। उनके बोलचाल एवं व्यवहार बर्ताव से विक्रम मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ। अभी तक अखिल आता था तो नलू खुश होती थी। वह केवल दोनों का, बोलने या हँसते में साथ देते थे, परन्तु आज उन्हें ऐसा लगा जैसे उन्हें एक मित्र मिल गया हो।

इसके बाद अखिल जब-जब नलू के घर आया, उसने नलू एवं प्रोफेसर साहब को प्राय: हँसते-बोलते सुना और उसका हृदय ईर्ष्या से भर उठा। वह भूल गया कि जिस नलू को वह प्रेयसी के रूप में अपनाने की बात सोच रहा है, उसे वह कभी 'दीदी' कहकर बुलाया करता था। उसकी वह बड़ी-बड़ी आँखें, गुलाबी होंठ, सफेद चिकनी बाँहें उसे ललचाने लगीं। साथ ही प्रोफेसर साहब से उसे ईर्ष्या होने लगी, वह उन्हें रास्ते से हटा कर नलू को अपनाना चाह रहा था। कक्षा में बैठे-बैठे भी उसका मन नलू के विचारों में उलझा रहता। कक्षा में क्या पढ़ाई हो रही है इसका उसे कुछ भी ज्ञान न था। घर में पढ़ाई करने के बदले वह कैलाश सिंह के साथ अपना समय व्यतीत करता और नलू को प्राप्त करने के उपाय पूछता रहता।

दिन, सप्ताह और महीने इसी भाँति व्यतीत होते चले गये। एक दिन नित्यप्रति की भाँति वह नलू के घर गया, तो वहाँ प्रोफेसर साहब को न पा कर घर में घुस गया। नलू खाट पर लेटी-लेटी पुस्तक पढ़ रही थी। अखिल दबे पाँव कमरे में आया और आ कर खाट पर बैठ गया। मुस्कुराते हुए बोला—'क्या पढ़ रही है ?'

'अरे तुम' कहती हुई नलू उठने लगी। तो अखिल ने कंधा पकड़ कर लिटाते हुए कहा

'नहीं—नहीं, लेटी रहो। लेटी हुई तुम अच्छी लगती हो।'

नलू उठती हुई बोली—'अरे एक तो इतने दिनों बाद तू आया

है और मैं बीमारों की तरह लेटी-लेटी तुझ से बातें करूँ। यह कैसे हो सकता है।'

नलू उठ कर बैठ गई। अखिल ने उसके हाथ से पुस्तक लेते हुए उसके दोनों हाथों को पकड़ते हुए कहा—'क्या पढ़ रही है, देखूँ तो'

नलू ने हाथ छुड़ाते हुए कहा—'कोर्स की किताब है, बहुत मुश्किल है। समझ में एक दम नहीं आ रही है।'

नलू का हाथ पकड़ कर अपनी ओर खींचते हुए अखिल बोला—'आजा मैं समझाता हूँ तुझे।'

अखिल का वह दबा हुआ मुस्कुराना, वह बार-बार छूने की चेष्टा, देखने का वह ढंग, नलू को कुछ अच्छा नहीं लगा। बोली—'अच्छा अखिल अब तू जा, काफी अँधेरा हो गया है बाहर।'

नलू के और समीप बढ़ते हुए अखिल ने पूछा...

'क्या आज मैं तुझे बहुत बुरा लग रहा हूँ ?'

अखिल से दूर हटती हुई नलू बोली...'नहीं, ऐसी बात तो नहीं है। पर अब से, जब भैया घर में रहा करें, तभी आया कर।'

'मैं एक महीने से नहीं मिला तो इतना बुरा हो गया क्या ?'

'नहीं अखिल, ऐसी बात नहीं है पर....'

'बस रहने दे, आज कल प्रोफेसर साहब से रँग-रलियाँ खेल रही है ना, फिर मैं क्यों अच्छा लगूँगा।' अखिल गुस्से में उबल उठा। और उठ कर एकदम बाहर चला गया।

अखिल की बात सुनकर नलू का सारा शरीर क्रोध से भर गया। वह किवाड़ बन्द कर खाट पर बुत की तरह बैठ गयी और अखिल में आये परिवर्तन पर विचार करने लगी। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। दीदी-दीदी कह कर जबान घिसा देने वाला लड़का, छोटी-छोटी बातों पर, पैर छू कर माफी माँगने वाला लड़का, जब देखो तब स्वच्छ हँसी हँसने वाला.... आज उसे क्या हो गया था ?

उसके मन में एक ही वाक्य बार-बार गूँज रहा था—आज कल प्रोफेसर साहब से रँग-रलियाँ खेल रही है ना तो मैं क्यों अच्छा लगूँगा। एक तो मैं रँग-रलियाँ खेल नहीं रही हूँ। अगर बात चीत करना रँग-रलियाँ हैं तो हुआ करे और यदि यह सत्य भी है, तो भी भाई का स्थान भाई का ही होता है, रँग-रलियों का स्थान प्रेमी या पति का होता है। इसमें जलन कैसी ? अखिल भाई है, वह भी छोटा भाई....और वह उस स्थान को जीवन भर सुशोभित करता रहेगा।....और अगर आज मेरी शादी हो जाती है, तो उसे खुश होना चाहिये। परन्तु....परन्तु यह अखिल यह सब क्यों बोल गया, क्या कर गया। कैसी घिनौनी बात कह गया वह !

...नलू का मन घृणा से भर गया। वह इन्हीं विचारों में डूबी बैठी थी कि विक्रम ने किवाड़ खटखटाया। नलू का ध्यान टूटा। उसने दौड़ कर किवाड़ खोला। घर में प्रवेश करते हुए विक्रम ने कहा, 'क्यों नलू, आज इतनी जल्दी किवाड़ क्यों बन्द कर दिये तूने ?'

'मुझे अकेले डर लग रहा था।'

और नलू ने फिर खटकनी लगा दी।

'पगली !' कह कर विक्रम ने उसके सिर पर एक चपत जमा दी।

'जा, खाना परोस' विक्रम ने कहा। नलू खाना परोसने चली गयी।

खाना खाते समय विक्रम ने नलू को बताया कि दफ़तर के मालिक ने बम्बई से एक मराठी ड्रामा कम्पनी बुलाया है। वह कम्पनी पाँच दिन यहाँ ठहरेगी। अतः उसे शुक्रवार से मंगलवार तक शाम को भी काम पर जाना पड़ेगा। वह दफ्तर से पाँच बजे लौट कर सात बजे खाना खा कर जायेगा और रात के डेढ़-दो बजे लौटेगा। नलू कुछ नहीं बोली। वह चुपचाप सब कुछ सुनती रही।....

'क्यों तू चुप क्यों है।'

"भैया अगर मैं भी आप के साथ जाया करूँ तो ?" नलू ने दीन भाव से पूछा।

'ड्रामा देखना चाहती है !'

'नहीं, मराठी ड्रामा मेरी समझ में क्या आयेगा ? जहाँ आप रहेंगे वहीं मैं भी रहूँगी। फिर साथ लौटेंगे।'

'क्यों, घर में तुझे डर लगता है क्या।'

'हाँ' नलू संक्षिप्त उत्तर देकर रोटी का कौर तोड़ने लगी। विक्रम नलू की ओर देखता रहा। फिर विचार मग्न हो कर बोला....'वैसे मैं तुझे रोज ले जाता, पर मैं नहीं चाहता कि तुझ पर मालिक के लड़के की नज़र पड़े। वह बहुत बदमाश है।'

नलू ने कुछ उत्तर नहीं दिया। घर में रहेगी तो उसे अखिल का डर था। भैया के साथ जायेगी, तो मालिक के सुपुत्र का डर था। नारी होना भी क्या आफत है। चारों ओर डर ही डर मँडराता रहता है। कुछ न कह कर चुपचाप रोटी खाती गई। विक्रम भी चुप हो कर खाना खाता गया। कुछ क्षण बाद नलू सुझाव देती हुई बोली....'महिलाओं का दरजा अलग रहता है भैया, मुझे वहीं बिठा देना। किसी को क्या पता लगेगा, मैं कौन हूँ।'

'पर मैं तो सात बजे जाया करूँगा, इन्तजाम करने, टिकिट बेचने। ड्रामा रात के साढ़े नौ बजे शुरू होगा। तू वहाँ सात से नौ बजे तक अकेली रहेगी, तब सब की नज़र तेरे ऊपर पड़ेगी। और वो बदमाश....तू जानती नहीं, वो कैसा आदमी है। मैंने उसकी कई बातें देख-सुन रखी हैं।

'नलू ने कोई उत्तर नहीं दिया।'

'तू ऐसा कर नलू, जैसे मैं जाया करूँ, तू अन्दर से किवाड़ बन्द करके सो जाया कर। जब तक मैं न आऊँ, तू किवाड़ मत खोल; समझी ?'

....नलू कुछ बोली नहीं; परन्तु उसने हामी में सिर हिला दिया। विक्रम समझ गया कि नलू को यह सुझाव कुछ पसन्द नहीं। परन्तु उसकी समझ में यह नहीं आया कि नलू को यकायक इतना डर क्यों लगने लगा। अभी तक उसने कभी यह बात नहीं उठाई थी; पर अब इस डर को लेकर इतनी उदास क्यों हो रही है। फिर विक्रम ने सोचा कि यह पहली बार है जब नलू एक बजे रात तक अकेली रहेगी। इस विचार के उठते ही विक्रम को लगा कि नलू का उदास होना ठीक ही है। बोला—'अच्छा नलू तू उदास मत हो। तू रोज मेरे साथ चला कर। नाटक के पहले तू महिलाओं के आराम कमरे में बैठ जाना और नाटक शुरू होने से आधा घण्टा पहले महिलाओं के दरजे में बैठ जाना।'

'अगर मैं रोज-रोज ड्रामा देखूँगी तो आप को खर्च ज्यादा बैठेगा। मैं सारा समय महिलाओं के आराम कमरे में ही बैठी रहूँगी।'

'नहीं....नहीं यह ठीक नहीं होगा। तू उस कमरे में अकेली रहेगी ? महिलाओं के क्लास में बैठना ही ठीक होगा। जहाँ तक हो सके, मैं तेरे लिए पास बनवा दूँगा। बस, अब तो खुश है ना ?'

विक्रम की ओर देखकर मुस्कराती हुई नलू बोली 'हाँ भैया, आप को चाहे जरा तकलीफ भी हो; पर मुझे अकेली घर पर छोड़ कर मत जाना'

'अच्छा-अच्छा, कह दिया न मैंने। कैसी पगली है रे तू, इतनी बड़ी होकर भी बच्चों-सी डरती है।'

...नलू ने उत्तर नहीं दिया। चुपचाप खाना खाती गई। विक्रम भी खाने लगा। खाना खत्म कर विक्रम बोला, 'आज बुद्धवार है और कल गुरुवार। परसों से पाँच रात के लिये रात्रि-जागरण शुरू हो जायगा।'

बर्तन समेटती हुई नलू बोली...'भैया आप को इस काम के लिये वेतन से ऊपर पैसे मिलेंगे क्या ?'

'अभी तो सेठ ने कुछ कहा नहीं, पर मुझे लगता नहीं कि कुछ मिलेगा।'

'क्यों भैया, सेठ नाटक कम्पनी के इन खेलों पर कुछ तो कमायेगा ही ?'

'हाँ, क्यों नहीं।'

'तो उसमें से कुछ हिस्सा काम करने वालों में क्यों नहीं बाँट देता ?'

'क्योंकि सेठ का पैसा कम हो जायगा, इसलिये।'

'वाह, यह कैसा जवाब दे दिया आप ने।'

'अरे नलू, तू इतनी किताबें पढ़ चुकी फिर भी बच्चों की सी बातें करती है। पैसे वाले लोगों से मज़दूरी करा कर ठीक पैसे दे देते हैं क्या ? अगर पाँच रुपये की मजदूरी करायेंगे, तो एक रुपया भी बहुत मुशकिलों से देते हैं।

शुक्रवार के दिन विक्रम दफ्तर से ठीक पाँच बजे लौट आया और फिर ट्यूशन पढ़ाने चला गया। वहाँ से लौटा तो सवा छः बज चुके थे। झटपट तैयार हो, खाना खा पी कर चल पड़े दोनों बहन भाई। दोनों चुप थे, क्योंकि दोनों विचार मग्न थे। विक्रम को नलू को साथ ले जाते बहुत बुरा लग रहा था। वह नहीं चाह रहा था कि सेठ का लड़का नलू को देख कर लार टपकाये। उस सेठ के बेटे ने कई महिलाओं पर, लड़कियों पर फबतियाँ कसी थीं, भीड़-भाड़ में कोहनी मारी थी और भी, कई ऊटपटांग बातें की थीं और अगर वह कोई गन्दी हरकत नलू के साथ करेगा तो वह सह नहीं पायेगा। वह कुछ कर देगा.... और उस कहने-करने का नतीजा होगा नौकरी से हाथ धोना। फिर वह नलू को कैसे पढ़ायेगा ? घर का खर्च कैसे चलेगा ? सेना से निकलते समय उसे जो पैसे मिले थे, वह उसने नलू की

शादी के लिये अलग रक्खे थे, परन्तु वह भी पाई-पाई खर्च हो गया है। अब उसके पास कुछ भी जमा पैसा नहीं है। नलू की पढ़ाई ने उसका सारा जमा पैसा खत्म कर दिया था। अगर आज उसकी नौकरी छूट जाती है, तो आठ-दस दिन में घर में कुछ खाने को भी नहीं मिलेगा। विक्रम का मन अपनी परिस्थिति पर गौर कर के बहुत दयनीयता अनुभव कर रहा था।

नलू सोच रही थी आज भैया के साथ आ कर उसने अच्छा किया, नहीं तो अखिल जरूर उसे परेशान करता। अखिल के परिवर्तित व्यवहार को वह बिलकुल पसंद नहीं कर पा रही थी। उसे ऐसा लगा कि अखिल के व्यवहार में कुछ गन्दापन आ गया। उसके बोलने हँसने में वह आनन्द नहीं है जो पहले आता रहा है। ऊपर से वही दिखने वाला अखिल अन्दर से शायद बदल गया। परन्तु नलू की समझ में नहीं आ रहा था कि अखिल क्यों और कैसे बदल गया। कल तक अच्छा व्यवहार करने वाला लड़का, यकायक ऐसा बुरा व्यवहार क्यों करने लगा ? शुद्ध सरल बातें कर के ठहाका मार कर हँसने वाला क्यों गन्दापन दिखाने लगा ? नलू इन्हीं विचारों में डूबी विक्रम के साथ जा रही थी कि किसी ने फबती कसी—

'क्या सुन्दर जोड़ी है '

दूसरा ने कहा 'मरता होगा अपनी जोरू पर।'

फबतियां सुनकर विक्रम को गुस्सा चढ़ा। उसने सिर उठा कर उन लोगों की ओर देखा, तो वे लोग दूसरी ओर देखते हुए निकल गये। नलू ने वह फबतियाँ सुनीं तो भैया के साथ रात के समय निकलने के लिये पछताने लगी। उसे घर पर ही रह कर किवाड़ बन्द कर सो जाना चाहिए था—उसने सोचा !

विक्रम और नलू दोनों चुपचाप सड़क नापते हुए चले गये। जैसे ही उन दोनों ने नाटक भवन में प्रवेश किया, विक्रम ने देखा कि सेठ के लड़के ने आगे आकर नलू को नमस्कार किया। नलू

ने भी हल्का मुस्कुरा कर नमस्ते का उत्तर दिया। नलू फिर विक्रम के साथ चलती चली गई। विक्रम ने नलू को महिलाओं का कमरा दिखा दिया। नलू अन्दर जा कर बैठ गई। विक्रम इन्तजाम में लग गया, परन्तु उसके मस्तिष्क में बार-बार यह प्रश्न उठ रहा था कि नलू इस सेठ के बदमाश बेटे का कैसे और कब से जानती है।

उधर सेठ का लड़का सोच रहा था कि कालेज की सब से सुन्दर लड़की ने पिता के एक मामूली क्लर्क से कैसे और क्या प्यार किया। अगर वह चाहे तो अमीर से अमीर लड़का भी उसके घर पानी भर सकता है। वह दो साल तक उससे मैत्री स्थापित करने की कोशिश करता रहा है, परन्तु जब देखो, अखिल साथ में रहता था और अब यह डेढ़ सौ रुपल्ली का क्लर्क उसके साथ बँध गया। उसके जी में आया कि पिताजी से कह कर विक्रम की नौकरी छुड़वा दें। जब नौकरी ही नहीं रहेगी, तो लड़कियों को कैसे लिये-लिये फिर सकेगा? उसे बेकार देख कर मिस नलिनी भी उसे छोड़ देगी।

इन्हीं विचारों में खोया वह एक खम्भे से टेक लगाये खड़ा था कि विक्रम उसके सामने से निकल रहा था। विक्रम को देखते ही चिढ़ कर बोला—'ए विक्रम, काउन्टर पर चल कर बैठो। इधर उधर शो-आफ करने की जरूरत नहीं।' विक्रम ने उसको ऊपर से नीचे तक निहारा। जी में आया कि कुछ कड़वा बोल जाय; परन्तु उसकी मजबूरी ने उसकी ज़बान रोक दी। भाग्य-वादी विचारधारा ने उसके अपमानित मन को सम्हाला। उसका मुख दो क्षण पहले गुस्से से फिर अपमान से लाल हो गया था।.... और विक्रम चल कर काउन्टर पर बैठ कर कभी टिकट गिनता तो कभी रेजगारी गिनता।

विक्रम को काम में व्यस्त देख कर वह लड़का महिलाओं के आराम कमरे की ओर गया। उसने मन में सोचा कि वह आज

मिस नलिनी से खूब बातें करेगा। विक्रम की हीन स्थिति के बारे में विस्तार से बात करेगा। परन्तु जैसे ही वह महिलाओं के कमरे के सामने पहुँचा उसने देखा कि मिस नलिनी प्रोफेसर दिलीप कुमार चटर्जी से घुल कर बातें कर रही थी। मुँह बिचका कर दूसरी ओर निकल गया। कुछ देर बाद अखिल भी इन दोनों के पास से होता हुआ निकल गया।

दूसरे दिन सुबह चाय पीते समय नलू बोली....'भैया आज शाम को मैं आप के साथ नाटक देखने नहीं जाऊंगी।'

'क्यों ?' विक्रम ने प्रश्न पूछा।

वहाँ पर हमारे पुराने कालेज का सब से बुरा लड़का फिरता रहता है।'

'कौन है वह ?'

'वही जिसने मुझे नमस्ते की थी।'

'अरे, वही तो सेठ का लड़का है।'

'अच्छा, मुझे मालूम नहीं था। पर मुझे जो मालूम है, वह यह कि सब उसे दादा कहते हैं। उसका पूरा नाम कैलाश सिंह है। वह तीन साल से बी० ए० में फेल हो रहा है। असल में कालेज में रह कर कालेज की लड़कियों को फाँसने की कोशिश करता है। लड़कियों के पीछे-पीछे उनके घर जाता है, रास्ते पर गन्दी फब्तियाँ कसता है। लड़कियों के माँ-बाप को गन्दी-गन्दी चिट्ठियाँ लिखता है पर उनमें अपना नाम नहीं लिखता।

'तो वे लड़कियाँ शिकायत क्यों नहीं करतीं ?' विक्रम ने पूछा।

'कई बार लड़कियों ने शिकायत की, पर कुछ नहीं हुआ। शिकायत करने वाली लड़कियों के पास सच्चाई का जोर था पर कैलाश सिंह के पास तो पैसे का, गुण्डागिरी का जोर रहता है। फिर बताओ लड़कियों की जीत कैसे हो सकती है ?'

'अच्छा हुआ तू ने कालेज बदल लिया।'

'हाँ ट्रेनिंग कालेज में कोई इतना बुरा लड़का नहीं है।' कहती हुई उसने चाय के बर्तन समेटे और चली गई रसोईकी ओर।

विक्रम वहीं बैठा-बैठा छत को एक टक देखने लगा। उसका मस्तिष्क विचारों से रिक्त था शायद।

दूसरे दिन जब अखिल ने देखा कि नाटक शुरू हो चुका है, परन्तु नलू कहीं दिखाई नहीं दे रही है तो वह समझ गया कि नलू घर पर अकेली होगी। अतः झटपट साइकिल पर सवार हो कर चल पड़ा नलू के घर। वहाँ पहुँच कर जैसे ही उसने किवाड़ खटखटाये, वैसे ही नलू खिड़की खोल कर उसे देख कर बोली....'अखिल अभी काफी रात हो चुकी है और भैया भी घर पर नहीं हैं, तुम फिर कभी आना।'

जल कुढ़ कर अखिल बोला, 'हाँ....हाँ, अब हमारे लिए क्यों खोलोगी किवाड़।'

'नहीं अखिल, ऐसी बात नहीं....।'

'बस रहने दे, प्रोफेसर साहब के आते ही किवाड़ तो क्या, सारा घर खुल जाएगा....।'

'चुप रहो अखिल, नीच कहीं का।' नलू ने खट से खिड़की बन्द कर दी। अपना अपमान देख अखिल ने दाँत पीसे और साइकिल पर सवार होकर सीधे घर की ओर चल पड़ा। अखिल को देखकर उसकी माँ बोली, 'क्यों रे, तू तो नाटक देखने गया था न, इतनी जल्दी कैसे आ गया ?'

बिना माँ को उत्तर दिये अखिल अपने कमरे में चला गया। उसके तन बदन से आग निकल रही थी। वह कभी अपनी मुट्ठी को मेज पर मारता तो कभी दीवार पर, परन्तु उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

'अखिल इसी प्रकार पागलपन की हरकतें कर रहा था कि समय के प्रहरी ने ग्यारह बजा दिये। अचानक उसे कुछ सूझ गया और वह कागज कलम लेकर लिखने बैठ गया।....

प्रिय महोदया,

मैं आपको नहीं जानता और न आप मुझे। फिर भी इतना मैं जानता हूँ कि आप नलू और विक्रम की चाची हैं। आपके संबंध में मुझे जितना मालूम हुआ है, उससे मैंने अंदाज लगाया कि आप नलू की दुश्मन नम्बर एक हैं।

मुझे नलू से मालूम हुआ है कि आपने उसके पिता का सब धन लेकर उसको और उसके भाई को घर से निकाल दिया। उसके बाद जो हुआ, वह आप जितना जानती हैं उतना ही मैं भी जानता हूँ। अगर आप किसी कारण नलू से बदला लेना चाहती हैं तो मैं भी उससे बदला लेना चाहता हूँ, क्योंकि इधर नलू दो साल तक मुझसे घनिष्ठ संबंध (आप समझ गई होंगी) रखती रही और अब मुझे अंगूठा दिखा कर दूसरों से नाता जोड़ती फिर रही है। अगर नलू समझती है कि शरीफ आदमीयों से खिलवाड़ करना इतना आसान है तो मैं भी उसे ठीक रास्ता दिखा देना चाहता हूँ। नलू को ठीक करना मेरा काम नहीं है, विक्रम का काम है, परन्तु ऐसा लगता है कि विक्रम नलू को इस गलत रास्ते पर चलने को प्रोत्साहित कर रहा है।

आप चाहें तो मदद का हाथ बढ़ायें, ताकि हम दोनों मिल-कर नलू से बदला लें। मैं उसकी ऐसो-ऐसी बातें जानता हूँ कि आपके पाँव पर उसको नाक रगड़वा सकता हूँ। अपनी राय लिखें तो आगे बात हो।

भवदीय
अखिल,

भैया,

प्रणाम। वैसे आपको पत्र लिखने का मुझे कोई अधिकार नहीं हैं, पर नलू के कारण में आपको भैया कहता रहा और अब नलू से सब प्रकार से सम्बन्ध टूटने की दशा में यह मेरा अन्तिम संबोधन है आप के लिये।

हाँ, इतना कहूँगा कि जिसको निभना या निभाना नहीं आता, उसको किसी के अच्छे खासे हरे-भरे जीवन में घुसने की कोशिश नहीं करनी चाहिये ! जिन कुत्तों को खीर नहीं पचती, उन्हें हड्डी ही चाटना चाहिये। आपकी आत्मा को इससे दुख होगा, लेकिन आपको जानना चाहिये कि इसी नलू के पीछे तंग आकर मैंने अपनी पढ़ाई बन्द कर दी है।

जिस दिन डिग्री की कमी की वजह से मुझे अच्छी नौकरी मिलने में अड़चनें पैदा होंगी उस दिन मैं नलू को सरापूँगा। इससे उसका कुछ भी नहीं बिगड़ेगा, पर मेरे मन को तो शान्ति मिल जाया करेगी। हो सके तो आप मुझे ऐसा पत्र लिखने के अनधिकार के लिये क्षमा कर दें। आपके होते कोई नलू का कुछ नहीं कर सकता, यह मैं जानता हूँ

अखिल,

प्रोफेसर साहब,

आप के प्रेम काण्ड के लिये बधाई। परन्तु एक बात याद रख लीजिये कि जिस पात्र को आपने अपने लिये चुना है, वह पवित्र नहीं है। मुझे अब पता लगा है कि पहले किसी और ने भी उसका प्रयोग किया है। एक दिन किसी और को अंगूठा दिखा कर मुझे अपनाया गया था, आज मुझे अंगूठा दिखा कर आप को अपनाया जा रहा है। कृपा कर के सावधान रहिये, नहीं तो आप को भी अंगूठा दिखाया जायगा।

अखिल,

इन तीनों पत्रों को लिफाफों में बन्द कर के पता लिख कर अखिल आधीरात के समय उन्हें पोस्ट कर आया तो उसे काफी हलकापन महसूस हुआ।

: ५ :

खट-खट-खट

'कौन है नलू ने घर के अन्दर से पूछा !

खट....खट....खट....

'अरे कौन है, बोलते क्यों नहीं ?' कहती हुई नलू ने खिड़की खोल कर बाहर झाँका। अनजान व्यक्ति, को साइकिल पकड़े किवाड़ के पास खड़ा देखकर नलू ने पूछा....'आप कौन हैं ?'

'यह विक्रम बाबू का घर है क्या ?'

'जी हाँ, क्यों क्या बात है ?'

'मैं बड़े अस्पताल से आ रहा हूँ। प्रोफेसर दिलीप कुमार चटर्जी अस्पताल में दो घण्टे से बेहोश पड़े थे अभी उन्हें होश आया तो उन्होंने विक्रम बाबू को बुला लाने को कहा है। आप मेहरबानी करके विक्रम बाबू को अस्पताल भेज दीजिये। कहियेगा कि वार्ड नम्बर दो में जल्द से जल्द पहुँच जायें !'

'क्या हो गया उन्हें ? ? कैसे बेहोश हो गए ?' घबरा कर नलू ने पूछा !

'उन्हें मारा-पीटा गया है।'

'अगर मैं आप के साथ अभी चलूँ तो....?'

'और विक्रम बाबू....!'

'मैं एक कागज़ में यह सब बातें लिख कर छोड़ देती हूँ जैसे ही विक्रम भैया आयेंगे उसे पढ़ कर अस्पताल पहुँच जायेंगे।'

'अच्छी बात है। चलिये, पर जल्दी चलिये।'

'अच्छा' कह कर नलू खिड़की बन्द कर के लिखने बैठ गई।

कपड़े बदल कर बाहर निकली तो उस व्यक्ति ने पूछा...'आप कैसे जायेंगी ?'

'मैं रिक्शे पर जाऊँगी और आप के पास तो साइकिल है ही।'

'अच्छी बात है !

झटपट रिक्शा कर के नलू एवं वह व्यक्ति हवा की तरह आगे बढ़ने लगे। जिस रफ्तार से रिक्शा आगे बढ़ रहा था, उसी रफ्तार से नलू के मस्तिष्क में कई प्रश्न उठते जा रहे थे—

किसने उन्हें पीटा ? क्यों पीटा ? कहाँ पीटा ? बहुत ज्यादा चोट तो नहीं आई ? अपाहिज तो नहीं हो जायेंगे ? कहीं इस दुनियाँ से तो....नहीं....नहीं ऐसा हो नहीं सकता है। भगवान् के घर में देर हो सकती है; परन्तु अन्धेर नहीं। मैंने अगर जिन्दगी में किसी को चाहा है, तो प्रोफेसर साहब को। अगर वह मेरे नहीं हो सकते हैं, तो मैं कमसे कम उन्हें फलता-फूलता तो देख सकूँ....उनकी प्यारी-सी पत्नी, प्यारे-से बच्चे को तो देख सकूँ। मेरे जीवन में हरा-भरापन नहीं है, मेरे किसी प्रिय के जीवन में तो यह देख कर मुझे तृप्ति मिल सकती है।...नहीं; उन्हें कुछ नहीं हो सकता।

इन्ही विचारों में डूबी नलू अस्पताल पहुँची। रिक्शा रुक गया, पैसा चुका कर वह जल्दी-जल्दी साइकिल वाले व्यक्ति के पीछे-पीछे जाने लगी। जैसे ही वह वार्ड में पहुँची तो नर्स ने उसे कान में बताया कि वह मरीज को देख सकती है, उन से बोल नहीं सकती। नलू ने हामी में सिर हिला दिया। फिर नर्स उसे प्रोफेसर साहब के पलंग के पास ले गयी। नलू ने देखा कि वे आँखें मूँदे पड़े हैं। सिर पट्टियों से बँधा है। खाट के चारों ओर पर्दे लगे हैं। दवाइयों की तेज बदबू आ रही है।

दो क्षण बाद प्रोफेसर साहब ने आँखें खोलीं तो सामने नलू

को पा कर एक टक उसे देखने लगे। नलू के आँखों में आँसू आ गए।

प्रायः दस मिनट बाद विक्रम घबराया हुआ वहाँ पहुँचा। दिलीप को देखते ही विक्रम ने बोलने के लिये मुँह खोला ही था कि नर्स उन्हें इशारे से चुप रहने को कह कर विक्रम को बाहर ले गई। जब विक्रम वापस आया तो कुछ शान्त था। इशारे से नलू को स्टूल पर बैठने को कहा और स्वयम् प्रोफ़ेसर साहब के सिरहाने बैठ गया। अकस्मात् किसी ने विक्रम के कन्धे को थपथपाया। चौंक कर उसने देखा तो वहाँ एक पुलिस अफ़सर खड़ा था। वह विक्रम को और नलू को इशारे से बाहर ले गया। पूछा....

'आपका नाम'

'विक्रम पांडे'

'और आप का'

'नलिनी पांडे'

'यह आप की...'

'छोटी बहन है' विक्रम ने कहा।

'प्रोफ़ेसर चटर्जी आप के मित्रों में हैं?'

'मेरे एक मात्र मित्र हैं।'

'आप बता सकते हैं उनके दुश्मन कौन हैं?'

'आज तक मुझे यह भी मालूम नहीं था कि उन जैसे भले आदमी का कोई दुश्मन भी हो सकता है।'

'इनको इतनी बुरी तरह से पीटा गया है? हो सकता है इनको खत्म करना चाह रहे थे....जाहिर है इनका कोई जानी दुश्मन है।'

'हमें इस दुश्मन के बारे में कुछ भी पता नहीं है।'

'कमाल है कि आप के दोस्त ने आप को अपने दुश्मन के बारे में कुछ नहीं कहा।' कुछ व्यंग्य से पुलिस अफसर ने कहा!

'आप यह बात व्यंग्य से क्यों कह रहे हैं ? हो सकता है कि गुण्डे किसी और को मारना चाह रहे हों और गल्ती से किसी और को मार बैठे हों।'

अपने को सम्हालते हुए पुलिस अफसर ने कहा...

'जी हाँ, हो सकता है। जब आप के दोस्त अच्छी तरह से होश में आ जायें और डाक्टर उन्हें बोलने की इजाजत दे दें तभी इस विषय में कुछ पता लगा सकेंगे।'

'हूँ।'

'अच्छा तो मैं जाता हूँ।' कहते हुए पुलिस अफसर उठ कर खड़ा हो गया। एक नजर नलू पर डाली और चला गया।

नलू ने विक्रम को देखा और विक्रम ने नलू को। फिर दोनों चुपचाप प्रोफेसर दिलीप कुमार के वार्ड की ओर जाने लगे। वार्ड में वे दोनों प्रवेश करने ही वाले थे कि नर्स ने कहा....'आप आधा घंटा और बैठ सकते हैं फिर आप दोनों को जाना पड़ेगा। कल से आप सिर्फ शाम के चार से छः के बीच इनसे मिलने आ सकते हैं।'

'इनके खाने का क्या होगा ?' विक्रम ने पूछा।

वैसे तो मरीज के रिश्तेदार को खाने का इन्तजाम करना पड़ता है, पर यह पुलिस केस है। इसलिये, अस्पताल से ही खाने का इन्तजाम कर दिया जायगा।'

'पर उनको अस्पताल का खाना पसन्द नहीं आयेगा। अगर हम घर से खाना लायें तो ?'

'नहीं, यह नहीं हो सकता। जब तक पुलिस का हुक्म न लिया जाय।'

फिर नलू और विक्रम दिलीप के पास पहुँचे। आधे घण्टे तक वहीं बैठे रहे और फिर दोनों उठकर घर चले आये।

घर पहुँच कर नलू ने कहा....'मुझे लगता है, अखिल की करतूत है।'

'चुप....चुप आहिस्ते बोल। कोई सुन लेगा, तो हमारी मुसीबत आ जायेगी। सबूत मागेंगे सबूत।' विक्रम को याद आया कि आज सुबह उसे अखिल का लिखा पत्र साफ बताता है कि वह प्रोफेसर साहब को पसन्द नहीं करता है, परन्तु उसने नलू से पत्र के बारे में कुछ नहीं कहा।

विक्रम और नलू उस रात बिना खाये-पिये सो गये। रात को उन्हें नींद नहीं आई। करवट बदलते रहे। दोनों के मस्तिष्क में कई विचार आ जा रहे थे। उसके बाद नलू रोज़ शाम के चार बजे अस्पताल जाती। विक्रम पाँच बजे दफ्तर से सीधे अस्पताल जाता और छः बजे दोनों साथ घर लौट आते। दिलीप और नलू को हँसते-बोलते देख कर विक्रम के दिमाग में कई बार एक प्रश्न घूम जाता....'क्या नलू की शादी दिलीप से कर दी जाय ?'

फिर मन उत्तर देता, नहीं; कभी नहीं।

'जाति से बाहर नलू को देने की आवश्यकता ही क्या है ? जाति के बाहर नलू को देने से जात-बिरादरी वाले क्या कहेंगे, उनको कौन-सा मुँह दिखाऊँगा ? नहीं, जो कुछ हो नलू का विवाह जाति में ही होना चाहिये।'

फिर विक्रम के मन के कोने से आवाज उठती...'जब चाची नलू का विवाह जाति में कर रही थी तब तुमने विद्रोह क्यों किया ?'

उत्तर मिलता....'चाची नलू की शादी बुड्ढे से कर रही थी। वह तो नलू की शादी युवक से करेगा।'

प्रश्न उठता....'युवक से विवाह करने के लिये पैसा कहाँ से आयेगा ?'

तब विक्रम मन ही मन तिलमिला जाता। इस कटु सत्य के लिए उसके पास कोई उत्तर नहीं था। फिर सोचता कि नलू के बी० टी० करने के बाद वह नौकरी करेगी। फिर दो नौक-

रियों से पैसा बचाया जायगा.... परन्तु दस-बारह हजार बचाने के लिये तो कई साल लगेंगे। तब तक क्या नलू क्वाँरी बैठी रहेगी ? फिर इतने साल नौकरी करने के बाद कोई उससे विवाह करने के लिये तैयार हो जायेगा ?

इन प्रश्नों के लिए विक्रम के पास कोई उत्तर न था। चाची से जिन्दगी भर के लिए दुश्मनी करके वह नलू को बाहर निकाल लाया था और अब वह नलू की समस्या हल नहीं कर पा रहा था। उसके पास एक ही बहन है; परन्तु उन लोगों का क्या होता होगा जिनके घर में चार-छः लड़कियाँ हैं ?

कुछ क्षण मन चुप रहता। फिर मन के किसी कोने से आवाज उठती—बंगाली ब्राह्मण भी तो अपने आपको कान्यकुब्ज कहते हैं। किसी जमाने में कन्नौज से ब्राह्मण की टोली बंगाल गई होगी और वही लोग आज मुखर्जी, चटर्जी, बनर्जी आदि कहलाते हैं। इसलिये अगर नलू की शादी दिलीप से हो जाय तो कोई हर्ज नहीं है....

'हर्ज कैसे नहीं है, बहुत हर्ज है। माँ की मरते दम तक यही इच्छा थी कि नलू की जाति में ही शादी हो। दूसरी जाति में जाकर लड़की को उस रीति-रिवाज में चलना मुश्किल होता है। उसके बच्चों की तो और मुश्किल होती है। माँ उन्हें अपनी रीति-रिवाज के अनुसार पालना चाहती है; परन्तु उन्हें पिता के रीति-रिवाज के अनुसार रहना पड़ता है। जब ये बच्चे बड़े होते हैं, तो उनका विवाह एक समस्या बन जातो है। उनका विवाह माँ की जाति वालों से करे या पिता का जाति वालों से। ढूँढ़-ढाँढ़ के बाद पता लगता है कि दोनों जाति वाले नहीं मानते।

नहीं; नलू का विवाह जाति के अन्दर ही होगा, जाति के बाहर नहीं !

इस प्रकार के विचार नित्य ही विक्रम के मस्तिष्क में उठते रहते थे।

नलू दिलीप के बहुत पास आ गई थी। मन ही मन वह दिलीप को चाहने लगी थी। दिलीप का उठना-बैठना, मुस्कुराना, सब कुछ नलू को रुचने लगा था। जब कभी दिलीप आँखें मूँद लेता या इधर-उधर देखता जाता, तो वह एक-टक उसे देखती रहती। उसे स्वयं नहीं मालूम था कि दिलीप को एक टक देखने में क्या सुख अनुभव करती थी ? दिलीप ने भी कई बार महसूस किया कि नलू मौका मिलने पर उसे एकटक देखती है। उसने सोचा, इसी बात को लेकर वह नलू को झेंपा देगा—

'पकड़ लिया चोर को'

नलू घबरा कर बोली...

'कौन चोर'

'नलू को, और किस को'

'क्यों मैंने क्या चोरी की है ?'

'चोरी-चोरी एकटक किसको देख रही थी।'

नलू का गोरा मुँह गुलाबी हो गया और उसने नज़र झुका दी।

'नलू'

'जी', नज़र झुकाये ही नलू ने उत्तर दिया।

'नलू मैं तुझे कैसा लगता हूँ ?'

'....' नलू से कुछ उत्तर देते नहीं बना।'

'जवाब क्यों नहीं देती नलू ?....नलू मुझे अब लगने लगा है कि मेरा जीवन तुम्हारे बिना अधूरा ही रहेगा। क्या तुम मुझ से....।'

दिलीप अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाया था कि नर्स आ गयी। नलू ने सिर उठा कर नर्स को देखा और फिर खिड़की के बाहर देखने लगी। नर्स के जाने के बाद दिलीप ने पूछा....

'नलू तुम्हारी पढ़ाई का क्या हो रहा है ?'

'सब ठीक हो जायेगा।'

'तुम मेरा कहना मानो। कल से तुम यहाँ मत आया

करो। घर बैठ कर पढ़ाई करो। कहीं मेरे कारण तुम्हारा साल खराब हो गया तो ?'

नलू ने एकदम दिलीप के मुँह पर अपनी हथेली रख दी। दिलीप ने उसका हाथ पकड़ लिया और चुपचाप उसे देखने लगा। दो क्षण बाद उन्होंने नलू के गोरे हाथ को चूम लिया। नलू ने नजरें झुका दीं।

नलू ने मन से प्रश्न किया—'क्या उसे दिलीप को छोड़ कर दूसरे किसी से विवाह करना पड़ेगा ?'

प्रश्न उठते ही वह अपना हाथ छुड़ा कर वार्ड के बाहर चली गयी। बाहर उसने देखा, एक छोटा-सा बाग है जिसके चारों कोने में एक-एक लम्बा पेड़ है। उस बाग के बीचों बीच एक चिड़िया का बच्चा पर फड़-फड़ा रहा था।

न जाने उसके पर पानी से कैसे भींग गये। बेचारा बार-बार परों को फड़-फड़ा कर उड़ना चाह रहा था, परन्तु वह असफल हो रहा था। नलू का हाल भी इस चिड़िया के बच्चे की भाँति था। अभी तक उसके मन में प्रेम का, चाह का अंकुर नहीं फूटा था तो वह कितनी खुश थी। खुलकर हँस सकती थी, बोल सकती थी। परन्तु जबसे उसके नन्हें से मन में अनजाने ही यह प्रेम का अंकुर फूटा है, उसे कुछ अच्छा नहीं लगता। पढ़ाई में मन नहीं लगता। खाने को जी नहीं चाहता। रात को नींद नहीं आती। दिन भर मन को जैसे कोई घुन खाये जा रहा हो। और फिर यह सब हो रहा है उस व्यक्ति के लिए, जिससे विवाह नहीं हो सकता। नलू की आँखें भर आईं।

नलू अपने आँसुओं को पोंछ ही रही थी कि किसी ने उसके कंधे पर हाथ रक्खा। नलू ने मुड़ कर देखा तो वह दिलीप था।

'अरे आप ? आपको तो खाट से उठना मना है ना ?'

'हाँ मना तो है, पर तुम क्यों भाग आई ?'

'चलिए, चलकर खाट पर लेटिये।'

और नलू के सहारे से दिलीप फिर अपनी जगह लेट गया। नलू ने कहा.... 'आपको अभी चलना-फिरना नहीं चाहिए।'

'वाह, कल सुबह मुझे अस्पताल से छुट्टी मिलने वाली है और तुम कहती हो....'

'अस्पताल से छुट्टी मिल जायगी' का अर्थ यह नहीं है कि आप बिलकुल अच्छे हो गये ?'

'यह तो मैं भी जानता हूँ; पर कल से मैं अपने कमरे में अकेला ही रहूँगा तो छोटी-मोटी चीजों के लिए मुझे चलना फिरना पड़ेगा ही।'

'बिलकुल नहीं।' विक्रम ने पास आते हुए कहा।

'अरे, आप हमारी बात कहाँ से सुन रहे थे।'

कल सुबह मैं तुम्हें लेने आऊँगा और जब तक तुम बिलकुल अच्छे नहीं होते; तुम हमारे घर पर रहोगे, क्यों नलू ?'

'हाँ, निश्चय ही, नहीं तो इनकी देख-भाल कौन करेगा ?'

'मुझे आप लोगों को इतना कष्ट देने का कोई अधिकार नहीं है।' दिलीप ने कहा।

'इस अधिकार की परिभाषा का प्रश्न हम लोग कल घर में बैठे-बैठे सुलझायेंगे। कल इतवार है, तो यह काम खूब अच्छी तरह से करेंगे, क्यों नलू ?'

'हाँ भैया' नलू ने समर्थन किया।

'कैसे जल्दी हाँ में हाँ मिलाती है अपने भैया की।' चिढ़ाते हुए दिलीप ने कहा।

नलू मुस्कुराकर विक्रम की ओर देखने लगी।

विक्रम भी मुसकुराकर बोला.... 'चलो नलू, घर चलें। देर हो रही है।'

'चलिये !!'

चलते-चलते विक्रम दिलीप से बोला.... 'कल मैं तुम्हें लेने आ जाऊँगा।'

दूसरे दिन जब तक दिलीप कुमार घर पहुँच कर खा-पी कर निश्चिन्त हुआ तो दोपहर हो चुका था। फिर उसने इतने दिनों से इकट्ठी डाक को एक-एक करके खोलना शुरू किया। विक्रम अखबार पढ़ने लगा। नलू भी दिलीप की डाक में से एक पत्रिका उलट-पुलट कर देखने लगी। यकायक दिलीप बोल उठा–

'अरे भैया देखो तो, अखिल ने क्या उलटी सीधी बातें लिखी हैं ?'

विक्रम दिलीप से पत्र लेकर पढ़ने लगा। पढ़ चुकने के बाद उसने पत्र को वहीं रखकर अपने कोट की जेब से दो पत्र निकाले। जब तक नलू ने उस पत्र को पढ़ा फिर विक्रम के लाये हुए पत्र को पढ़ा। एक विक्रम को संबोधित कर लिखा था और दूसरा चाची को। चाची ने उसी पर एक ओर लिखा था....

'तुम दोनों घर छोड़ कर भी मेरा पीछा छोड़ नहीं सके। नागपुर जाकर मेरे विरुद्ध प्रचार कर रहे हो। सत्यानास हो जाय तुम दोनों का। मरो तो तुम्हारे मुँह में पानी डालनेवाला कोई न मिले। नीच कहीं के।'

ये दोनों पत्र पढ़कर नलू गुमसुम-सी रह गयी। विक्रम और दिलीप भी विचार-मग्न हो गये। कुछ क्षण बाद नलू फूट-फूट कर रोने लगी। नलू को रोता देखकर दिलीप बोला—

'अरे, इसमें इतना रोने की क्या जरूरत है ? जिन्दगी में बुराइयों का सामना भी करना पड़ता है। बुरे लोगों से भी निपटना पड़ता है।'

नलू ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह रोती रही !

विक्रम ने कहा.... 'यह क्या हो गया है अखिल को ?' देखने में कितना सीधा-सादा लड़का था। दिनभर दोनों सगे भाई-बहन की तरह हँसी खुशी रहते थे और अब....

रोते हुए नलू ने कहा....'मैंने किसी का क्या बिगाड़ा है ? एक के बाद एक मुझे दुखी करने के लिए तैयार रहते हैं। जब

मैंने एफ० ए० पास किया था तो चाची सह नहीं सकीं। अब मैं खुशी चैन से जी रही हूँ तो अखिल से सहा नहीं गया। क्या मेरे भाग्य में चैन से जीना नहीं है ? मैंने कभी/किसी का बुरा नहीं चेता तो भी लोग मुझसे ही दुश्मनी करते हैं....इस जीने से तो मर जाना अच्छा है।'

'नलू, तेरा दिमाग तो ठीक है ना ?' बात काटते हुए विक्रम बोला।

'मुझ से नहीं सहा जाता।'

'नारी है ना, बस तुम लोगों को तो चारदीवारी में बन्द करके हर तरफ से तुम्हारी रक्षा करो तभी खुश रहती हो। दुनियाँ में बाहर निकल कर पहले ही प्रहार में खत्म हो गई ?' अगर तेरा यही हाल है तो चल तेरी शादी कर देता हूँ। वह चाहे तुझे सुख से रखे या दुख से, पर रखेगा तुझे चारदीवारी में।'

'नहीं भैया मुझे पढ़ाई....'

'पढ़ाई पूरी करनी है, अपने पाँव पर खड़ा होना है, तो तुम्हें आदमी बनना चाहिये। हम लोगों जैसी हिम्मत होनी चाहिये। ईंट का ज़वाब पत्थर से नहीं दे सकती तो कम से कम सह जाने की आदत डालो। बैठ कर टेसुवे बहाने से कुछ नहीं होता। आदमी घर से निकल कर घर वालों के लिए कमा कर लाता है, तो तुझे मालूम है, उसे कितने लांछन, दुख और ठोकरें सहनी पड़ती हैं ? अपने पाँव पर खड़ी होने के लिए तुम जैसी लड़कियों को भी यह सब सहने के लिये तैयार होना चाहिए। सुबक-सुबक रोने से कुछ नहीं होगा।'

'बिलकुल ठीक कहते हैं आप।' प्रोफेसर साहब ने कहा' 'मुझे लगता है कि घर से बाहर निकलने वाली लड़कियों को आदमी से ज्यादा हिम्मत रखनी चाहिए। अखिल के इन पत्रों का अर्थ क्या है ? वह नीच दीदी कहता हुआ पास आया और अब पाप उपजा है उसके मन में।'

'अभी चलते हो क्या ?....अरे मैं तो भूल ही गया कि तुम अभी चल फिर नहीं सकते। मुझे उनका पता दे दो। मैं उन्हें बुला लाता हूँ।'

'हाँ यह ठीक रहेगा।' और दिलीप ने एक कागज पर पता लिख दिया। दिलीप ने तीनों पत्रों को बटोर कर रख लिया। अब तक नलू का रोना बन्द हो चुका था। नलू जहाँ बैठी थी, वहीं बैठी रही। उसके मस्तिष्क में एक दम कई प्रश्न उठने लगे— 'अगर भैया इन सब चिट्ठियों को दबा कर रख लेते तो बात यहीं दब जाती। भैया भी कैसे हैं, पहले प्रोफेसर साहब को बुला लाये। फिर वकील सलाह देगा तो कोर्ट में जाना पड़ेगा।.... फिर...फिर....सब अखबारों में इस केस का ब्योरा छपेगा। जहाँ हम लोग जायेंगे, लोग हमारी तरफ उँगली उठायेंगे। सब हमको बुरा समझेंगे। लोग समझेंगे कि अगर अखिल बुरा है तो नलू भी कुछ हद तक जरूर बुरी होगी, इसीलिये तो बात इतनी बढ़ गयी है। दुनियाँ में ऐसा कोई नहीं होगा जो हमको सौ फीसदी ठीक समझेगा। कैसा दुर्भाग्य है ? यह दुनियाँ शायद हम जैसे लोगों के लिये नहीं है। यहाँ तो चाची जैसे, कैलाशसिंह जैसे और अखिल जैसे लोग ही रह सकते हैं।'

× × × ×

अखिल ने चिट्ठियों को पोस्ट कर दिया था, परन्तु वह इन बातों को पचा नहीं सका और चल पड़ा कैलाश सिंह की ओर, सब कुछ बताने के लिये। मन ही मन उसने कल्पना कर ली थी कि कैलाश सिंह उससे खुश होगा, उसे बढ़िया होटल में ले जा कर चाय पिलायेगा, पीठ ठोकेगा, आदि-आदि !

जब अखिल कैलाश सिंह के घर पर पहुँचा तो उसे पता लगा कि अभी वह सो रहा है। अखिल को बैठक में इन्तजार करने के लिये कहा गया। बैठक में अखिल कभी इस अखबार को उलटने-पुलटने लगता तो कभी उस पत्रिका को परन्तु अखिल

'मैं चाहता हूँ कि अखिल की करतूतों का ऐसा जवाब देना चाहिए कि अखिल भी जिन्दगी भर याद रखे।' विक्रम ने कहा। दिलीप कुमार ने कहा' 'मैं तो यही कहूँगा कि आप अखिल पर मानहानि का दावा कर दें, वह भी सिविल सूट नहीं, क्रिमिनल ?'

अब तक नलू का रोना कम हो गया था। प्रोफेसर साहब का सुझाव सुन कर बोली....

'पर मैं नहीं चाहती कि हम लोग कोर्ट में जायें। अखिल जब ऐसे बेशर्म हो कर ऐसी गन्दी बातें लिखने के लिए सरासर झूठ बोल सकता है तो वह कोर्ट में भी मुझ से गन्दे-गन्दे प्रश्न पूछेगा और मुझे जवाब देना पड़ेगा।'

'बस येही बातें तो मुझे अच्छी नहीं लगती हैं तेरी। गन्दे प्रश्नों का जवाब देना पड़ेगा तो दो। एक बदमाश को ठिकाने लगाओगी तो दस बदमाश सतर्क हो जायेंगे। एक की बदमाशी छुपाने की कोशिश करोगी तो सौ बदमाश तुम्हें खाने आयेंगे। तुम लड़कियाँ लोगों के नीच प्रहार दवा कर क्यों रखना चाहती हो, समझ में नहीं आता।' विक्रम ने कुछ झिड़क कर कहा।'

'इसीलिये तो पुरुष वर्ग नारी पर किसी प्रकार का भी लांछन लगाना आसान समझती है और औरतें कोने में बैठ-बैठ कर सव सह जाती है।' प्रोफेसर साहब ने कहा।

'पर मैं नहीं चाहता कि तुम ऐसी डरपोक बनो, तुम मेरी बहन हो। अब से कभी मैंने तुझे टेसुवे बहाते देखा तो अच्छा नहीं होगा।'

मेरा भी यही विचार है। हम दोनों को कुछ ऐसा करना चाहिये कि अखिल भी ठिकाने लग जाये और अखिल जैसे और नीच भी सवक सीख लें।'

'हमको किसी अच्छे वकील से इसके बारे में पूछना चाहिये।'

'तो चलो मैं अपने दोस्त के पास ले चलता हूँ, आप को।'

का मन कही भी नहीं लग रहा था। जल्दी से जल्दी दादा को सब कुछ बताना चाह रहा था। घंटा, सवा घंटा जैसे-तैसे काटने के बाद कैलाश सिंह अपने नाइट गाउन में बैठक में आया। दादा को देखते ही अखिल अपनी कुर्सी से उछल-सा पड़ा और खड़े ही खड़े उसने सब बातें दादा को बता दीं। कैलाश चुप सब सुनता रहा। जब अखिल का गुबार कुछ कम हुआ तो कैलाश ने उसे बैठने का इशारा किया और वह भी बैठ गया। बैठने के बाद भी जब कैलाश कुछ नहीं बोला तो अखिल ने पूछा....

'क्यों दादा आप चुप क्यों हैं ?'

'अखिल तू बेवकूफ है। तू नलिनी के पीछे क्यों पड़ा है ? तुझे मालूम होना चाहिये कि वह हमारे यहाँ के एक कलर्क विक्रम को चाहती है।'

'अरे दादा, विक्रम तो उसका भाई है !'

'तुझे कैसे मालूम ?'

'विक्रम मेरे बड़े भाई के दोस्त हैं और जब विक्रम और नलू नागपुर आये थे तो हमारे घर ही तो ठहरे थे।'

'अच्छा ?'

'हाँ दादा।'

'अच्छा अखिल अब तू जा, मैं नहा धो लूं, फिर मुझसे कैफे बंगलौर में मिलना। जगह तुम्हें मालूम है ना ?'

'हाँ मालूम है, पर मुझे अब क्या करना चाहिये दादा ?'

'सोच कर बताऊंगा वहीं पर....'

विक्रम नलिनी का भाई है तो मैं उसे अब भी पा सकता हूँ—कैलाश सिंह ने सोचा।

नलू का खूबसूरत भोला चेहरा, बड़ी बड़ी आँखें, सफेद दाँतों की पंक्ति उसकी आँखों के सामने घूम गई। उसने सोचा कि जिस प्रकार उसने पुष्पा, अनिता, कमला आदि लड़कियों को बरबाद कर दिया, उसी प्रकार वह नलिनी के साथ भी कर सकता है।

....परन्तु नलिनी के पास पहुँचना भी तो मुश्किल है। रसिक लड़की को घेरना आसान है; परन्तु नलिनी जैसी रूखी, अरसिक और किसी की परवाह न करने वाली लड़की को घेरना जरा मुश्किल है। न उसके पास नाम का लालच है, न पैसों का। उससे कितनी वार कहा गया कि किसी न किसी कमेटी को मंत्री आदि बनो तो नाम होगा और....पर वह कैसे रूखेपन से कहती है...हमें कुछ नहीं बनना है।...इसको फँसाने का एक ही तरीका है। इसके भाई पर कोई एहसान करना चाहिये।

...परन्तु क्या पिताजी मान जायेंगे ?...और बिना पिता जी के माने, न तो उसकी तनख्वाह बढ़ सकती है और नहीं उसे ऊँचे ओहदे पर चढ़ाया जा सकता है। फिर पिताजी ऐसे हैं नहीं कि मेरे कहने पर किसी कर्मचारी का वेतन वढ़ा दें। तो....?

कैलाश ने इस प्रश्न के उत्तर के लिये अपने कमरे के कई चक्कर लगाये, परन्तु उसे कुछ नहीं सूझ रहा था। वह ऐसा कुछ सोच लेना चाहता था कि उसका कुछ न जाये, परन्तु सफलता उसके हाथ लगे। अन्त में उसने तय कर लिया कि वह अखिल का सब भेद विक्रम और नलू को वताकर उसका विश्वास-पात्र वनेगा। और जव एक वार किसी पर विश्वास वैठ जाता है, तो सव रास्ते साफ हो जाते हैं।

कैलाश मुस्करा पड़ा।

अखिल को कैलाश के साथ विस्तार में बातचीत करने की बड़ी जल्दी थी। अतः वह घर जा कर नहा-धो कर कुछ खाने-पीने के बदले सीधे कैफे वैंगलौर जा पहुँचा और कैलाश का इन्तजार करने लगा।

मन में सोच रहा था कि वहाँ कैलाश दादा की टोली के दूसरे लड़के भी मिल जायेंगे तो उनसे भी विस्तार में बातें करूँगा; पर जब वह कैफे पहुँचा तब वहाँ कोई न था। कैफे

के जिस कमरे में इन लोंगों का उठना बैठना होता था, वह सूना पड़ा था। उसने तय कर किया कि वह वहीं बैठ कर कैलाश दादा की प्रतीक्षा करेगा। उसने दो बार चाय पी ली। फिर भी कैलाश नहीं आया। आखिर ऊब कर वह होटल से निकल कर सामने फैले जुम्मा तालाब के किनारे आ बैठा और उसे एकटक देखने लगा। तालाब का पानी कितना शान्त था। हवा के कारण छोटी-छोटी लहरें उठती थीं। वैसे तालाब का पानी बड़ी शान्ति से वहाँ पड़ा था, वह पानी ऊपर से साफ-सुथरा भी दिखाता था; परन्तु हल्की वदबू देने वाली हवा से अनुमान लगाया जा सकता था कि तालाव का पानी साफ नहीं है। कभी-कभी मन्द हवा अखिल के बालों को झकझोर देती थी।

प्रतीक्षा करते-करते अखिल को कैलाश पर गुस्सा आ रहा था। आज उसे जितनी कैलाश की जरूरत थी, वह उसे उतना ही टाल रहा था। जगह, समय, सब कुछ तय करने के बाद भी वह नहीं आ रहा था। उसे लगा कि कैलाश जैसे रईस लोग भी जुम्मा तालाब जैसे हैं, ऊपर से देखने में विशाल और साफ दिखते हैं परन्तु अन्दर से गन्दे हैं। अगर वह अन्दर से भी साफ होता तो आज उसे धोखा नहीं देता। अखिल का सिर घूम गया। भूख प्यास ने उसे अलग परेशान कर रखा था। उसने रास्ता चलते एक व्यक्ति से पूछा, 'जी क्या बजा है ?'

'तीन बजने को पाँच मिनट'

तीन बजने को पाँच मिनट। अखिल साइकिल उठा कर सीधे घर की ओर चल पड़ा।

उधर कैलाश घर से सीधा कालेज गया। फिर करीब ढाई बजे अखिल के घर गया। कालेज में प्रति क्षण उसे याद था कि अखिल उसकी प्रतीक्षा जुम्मा तालाब पर कर रहा है। अतः ढाई बजे वह अखिल के घर केवल इसलिये जा रहा था कि उसे कोई बहाना बता कर जुम्मा तालाब पर न मिलने

की माँफी माँगी जाय। कैलाश जैसे ही अखिल के घर पहुँचा, मालती ने किवाड़ खोले। 'अखिल है घर में ?' प्रश्न हुआ।

'जी नहीं' उत्तर दिया गया।

'घर में और कोई है, मोहन भैया, भाभी या....'

'नहीं कोई भी नहीं है। सब बाजार करने गये।' मालती ने बात काट कर कहा।

'आप मुझे कागज-पेन्सिल दे सकती हैं, जिससे मैं जो बात कहने आया हूँ वह लिख दूँ, फिर आप उसे अखिल को दे सकती हैं।'

जिस लहजे में कैलाश सब कुछ कह गया था, मालती ने सोचा कि कोई गम्भीर बात है।

बोली, 'आप अन्दर आइए, बैठक में बैठकर जो लिखना है लिख लीजिये।'

'अच्छा।' कह कर कैलाश बैठक के कमरे में गया। मालती अन्दर वाले कमरे में कापी पेन्सिल लेने चली गई। कैलाश ने दबे पाँव उसका पीछा किया, जैसे ही वह अन्दर वाले कमरे में पहुँची, कैलाश ने उसे पकड़ लिया। मालती ने चिल्लाने की कोशिश की, परन्तु कैलाश ने उसके मुँह को अपने हाथ से बन्द कर लिया था। मालती कैलाश के मजबूत बाहुपाश में तड़प ही रही थी कि अखिल ने कमरे में प्रवेश किया। अखिल को देखते ही कैलाश मालती को छोड़ कर बाहर जाने लगा। अखिल का गुस्सा सातवें आसमान पर पहुँच चुका था। उसने लपक कर कैलाश को पकड़ना चाहा और उसके पीछे दौड़ा। कैलाश ने पीछे मुड़ कर अखिल को ऐसा धक्का दिया कि वह जमीन पर औंधा जा गिरा। अखिल अपने आप को सम्हाल भी न पाया कि कैलाश घर से निकल कर बहुत दूर जा चुका था।

× × ×

शाम की चाय के साथ आज नलू ने पकौड़ियाँ बनाई थीं।,

उसे मालूम था कि दिलीप को पकौड़ियाँ बड़ी पसन्द हैं। जैसे ही पकौड़ियाँ दिलीप और विक्रम के सामने रखी गईं, दिलीप ने विक्रम से नज़र चुराकर नलू को देखा। अजाने ही नलू की आँखें भी दिलीप की ओर उठीं। जैसे ही उसने दिलीप को अपनी ओर देखते पाया, वह नजर झुका कर चाय लेने चली गई। वह चाय की प्याली दिलीप और विक्रम के सामने रख रही थी कि कैलाश ने घर में प्रवेश किया। कैलाश को देख कर नलू काठ की तरह खड़ी ही रह गई। विक्रम ने कैलाश को देखते ही भाँप लिया कि कुछ बुरा होने वाला है। वह भी कुछ न बोल सका। दिलीप ने क़ैलाश को देखते ही कहा....'हेलो कैलाश, आज यहाँ कैसे ?'

'सर, आप को देखने।'

'ओ, थैंक यू। अब मैं बिलकुल ठीक हूँ, फिक्र की कोई बात नहीं है।'

'सर, मैंने उस लड़के का पता लगा लिया जिसने कई अश्लील पत्र लिखे और आप को गुण्डों से पिटवाया था।'

'कौन है वह लड़का ?'

'नाम रहने दीजिये।' कैलाश ने कहा।

'फिर भी पता तो लगे।' विक्रम ने हिम्मत बाँध कर पूछा।

'मुझे, कहते हुए अफसोस हो रहा है कि उस बदमाश को मिस नलिनी 'भाई' कहती हैं।'

'अनिल है क्या ?' विक्रम ने पूछा

'जी हाँ !' कैलाश ने कहा।

'अगर हम कोई केस करें तो क्या आप इस बात की गवाही दे सकते हैं ?' दिलीप ने पूछा।

कैलाश सिटपिटा गया !!

'जी....जी....वह सब मेरी आँखों देखी बात तो नहीं है।

गवाही के लिये तो आँखों देखा हाल होना चाहिये ।'....कैलाश ने कहा ।

'नहीं... नहीं....ऐसी बात नहीं है। अखिल ने तुमसे जो कुछ कहा है, तुम कह देना, गवाही के समय।' दिलीप ने कहा ।

'और अगर अखिल साफ मुकर जाये कि मैंने कुछ नहीं कहा, तब ?' कैलाश ने प्रश्न किया ।

'उसकी चिन्ता तुम क्यों करते हो ? गवाही का अर्थ है कि इस केस के बारे में जो कुछ तुम्हें पता है, वह सच-सच बताना। बस तुम्हें जितना मालूम है उतना तुम बता दो।' दिलीप ने समझाते हुए कहा ।

'सर, मैं कोर्ट के चक्कर में नहीं पड़ना चाहता, इसलिए मुझे आप गवाही की मुसीबत से छोड़ दें तो ठीक होगा।' कैलाश ने अपना निर्णय दिया ।

'अच्छा, तुम नहीं तो किसी और को गवाही के लिए तैयार कर दो, पर वह सब सच हो।'

'वह मैं कैसे कर सकता हूँ सर ?' कैलाश ने नम्र होकर कहा ।

'कैलाश, मुझे सब पता है। तुम क्या कर सकते हो और क्या नहीं कर सकते हो। अगर तुम कुछ भी नहीं कर सकते तो अखिल के विरुद्ध हमारे कान भरने क्यों चले आये ?' दिलीप ने कुछ सख्त होकर कहा ।

'सर .. सर....'

कैलाश को शब्द नहीं मिल रहे थे। बिना कुछ बोले उठकर वह चला गया ।

कैलाश के जाने के बाद विक्रम बोला, 'दिलीप, तुमने यह बहुत बुरा किया ।'

'क्या बुरा किया मैंने ?'

'तुम्हें मालूम होना चाहिए कि कैलाश मेरे मालिक का लड़का है। वह मेरी नौकरी खत्म कर सकता है। फिर बागपुर के गुण्डों में से एक है वह। नलू का बाहर जाना दूभर कर देगा।''

'विक्रम भैया, आपको हो क्या गया है ? क्या आप कैलाश से या कैलाश जैसे लोगों से जिन्दगी भर डरते ही रहना चाहते हैं ?'

'और दूसरा रास्ता ही नहीं है दिलीप।' विक्रम ने हताश होकर कहा।

'अगर आपकी नौकरी छूट गई तो मैं कोशिश करूँगा दूसरी नौकरी के लिए और नलू का जिम्मा भी मैं लेता हूँ। मैं रोज इसे घर से ले जाया करूँगा और कालेज के बाद इसे घर छोड़कर जाया करूँगा।'

'तो इन गुण्डों का गुस्सा तुमपर उतरेगा।' विक्रम ने कहा।

'तो क्या हुआ, वह लोग फिर मुझे मारेंगे और हो सकता है कि अब की बार जान से ही मार डालें....'

'अरे....अरे, क्या बक रहे हो, होश में तो हो,' बात काटकर विक्रम ने कहा।'

हँस कर दिलीप ने कहा...'हाँ भैया, पूरे होश में हूँ। अगर मैं मर भी जाता हूँ तो कौन माँ-बाप या बीवी-बच्चे हैं रोने के लिये। हाँ, एक भला हो जायेगा पुलिस वाले जरा ज्यादा ढूँढ़-ढाँढ़ करेंगे और गुण्डे लोग पकड़े जायेंगे, तो बाकी लोगों के प्राण बचेंगे।'

'बस....बस रहने दो अपनी सोशियल सर्विस। नलू जरा चाय गर्म कर ला तो, सब ठंड़ी हो गई।'

नलू चाय गर्म करने चली गई।

'अरे दिलीप, तुझ में बड़ी हिम्मत है।' विक्रम ने कहा।

'आप में भी कुछ कम हिम्मत नहीं है। प्रत्येक इंसान में हिम्मत होती है और कमजोरी भी।' दिलीप ने कहा।

'फिर भी तुमने कैलाश को नाराज़ करके ठीक नहीं किया।'

'जब कुत्ता पास आकर भौंकने लगे तो जमा कर दो लात मारना चाहिये, वह दूर जा कर भौंकने लगता है। उसे फिर पास आते डर लगता है।'

'दूर हो चाहे पास, भौंकता तो रहेगा।'

'दूर से भौंकेगा तो हम तमाशबीन की तरह तालियाँ पीटेंगे, पास आकर भौंकेगा तो हमारे कान फटेंगे।' दिलीप ने हँसते हुए कहा।

'अब तुमसे कौन बहस करे। तुम अकेले हो, इस लिये बढ़-बढ़ कर बात करते हो। अगर मेरी तरह बहन का बोझा होता तो दब कर चलते।' विक्रम ने कहा।

'आपने बहन के बोझे को बहुत ढोया है। अब इस बोझे को दूसरे के सिर डाल दीजिए।' दिलीप ने कहा।

अब तक नलू चाय लेकर आ गई थी और एक-एक प्याली दोनों के सामने रख कर अपने लिये चाय ढाल रही थी।

'इसकी शादी कर दो, निकाल दो इसको घर से, फिर हम और आप आराम से रहेंगें।' दिलीप ने नलू की ओर देखते हुए कहा। नलू ने शर्म से सिर झुका लिया।

'यह तो मैं भी चाहता हूँ, पर हमारी बिरादरी में कोई लड़का ही नहीं मिलता है। फिर हमारी जात में पैसे भी बहुत लगते हैं।'

'अरे छोड़ो जात-पाँत। किसी भी अच्छे लड़के को देख लो और शादी कर दो इसकी।'

'हमारी जाति वाले क्या कहेंगे ?' विक्रम ने कहा

'अभी आप के जाति वाले आ कर यह क्यों नहीं कह देते हैं कि तुम्हारी बहन विवाह योग्य हो गई है इसकी शादी फलाँ लड़के से कर दो, पैसों की कमी पड़े तो हम देंगे। जाति वाले सिर्फ तालियाँ पीट कर हँसने वालों में हैं, डूबते को डुबाने वालों

में हैं, पर मदद कोई नहीं करेगा। दुख तकलीफ में हाथ नहीं बटाएँगे, साथ नहीं देगें। क्या मैं नहीं जानता इन बातों को ? मेरा कुटुम्ब इस जाति बिरादरी के चक्कर में ही नष्ट हो गया है। आप छोड़िये इन बातों को और नलू की शादी किसी सुशिक्षित, सभ्य, कमाऊ लड़के से कर दीजिए।'

विक्रम के सामने उसके अपने विचार जैसे साकार हो गये। उसे याद आया कि दिल्ली से लौटने के बाद उसके भी ऐसे ही विचार थे। और उन्हीं विचारों के कारण वह नलू को उस अनमेल विवाह से बचा सका था।

विक्रम को चुप देख कर दिलीप ने कहा, 'अगर आप कहें तो मैं ढूँढ़ दूँ लड़के को। हमारे कालेज में तो बहुत से प्रोफेसर अविवाहित है।'

'नहीं...नहीं, तुम लड़का ढूँढ़ने की तकलीफ मत करो। मैंने ढूँढ लिया है लड़का।'

'अरे तो फिर देर किस बात की है, चट मँगनी और पट ब्याह कर दो।'

'नहीं; यह नहीं हो सकता, क्यों कि वह लड़का अभी-अभी पिटा है और उसके जख्म भरने आवश्यक हैं और नलू को बी० टी० पास करना है। फिर शादी कर दूँगा।'

नलू और दिलीप दोनों आश्चर्यचकित विक्रम की ओर देखने लगे।

खट-खट-खट....किवाड़ पर किसी की दस्तक ने तीनों का ध्यान आकर्षित किया।

'कौन है ?' विक्रम ने आश्चर्य से कहा। नलू कुछ घबरा गई, दिलीप देखता रह गया।

—यह तार किसका है कहाँ से आया है ? क्या बुरी खबर है इस में। प्रायः तीनों के मन में प्रश्न उठे। विक्रम ने उठ कर किवाड़ खोले। तो सामने तार वाला साइकिल लिये

खड़ा था। विक्रम को देखकर उसने एक कागज तथा एक तार का लिफाफा बढ़ा दिया....।

विक्रम ने कागज पर दस्तखत कर दिये और वहीं खड़ा-खड़ा तार का लिफाफा खोल कर पढ़ने लगा। जब तक नलू भी विक्रम के पास आ कर बोली, 'किस का तार है ?'

'चाची का तार है। लिखा है कि मोटर दुर्घटना के कारण चाचा को सख्त चोट आई है, एक दम चले आओ।'' दिलीप खाट पर बैठे-बैठे ही बोला, 'क्या आप जा रहे हैं ?'

'हाँ जाना पड़ेगा। घर में मुझे छोड़ कर दूसरा आदमी भी तो नहीं है। चाची का लड़का कुल आठ साल का ही है।' विक्रम ने उत्तर दिया।

'भैया आप भी कमाल करते हैं। आप चले जायेंगे तो मैं अकेली यहाँ कैसे रहूँगी ?' नलू ने पूछा...

'क्यों, दिलीप है।' कहते हुए विक्रम अपनी जगह पर आ कर बैठ गया।

'मैं नलू के साथ घर में अकेला रहूँगा तो क्या लोग कहेंगे ? मैं अपने घर चला।' दिलीप ने कहा।

'तुम अपने घर क्यों जाओगे ? यहीं रहो। तुम्हारी देख-भाल नलू करेगी और नलू पर निगरानी तुम रखना। बस मैं दो दिन में वापस आ जाऊँगा।' विक्रम ने कहा।

'भैया, क्या जाना जरूरी है ? चाची ने तुम्हें दुख देने में कोई कसर तो उठा नहीं रखी थी और अब दुख के दिनों में तुम्हें ही बुलाने की सूझी मदद के लिए ! मुझे तो इसमें कोई चाल दिखाई देती है।' नलू ने कहा।

'मैं कल सुबह जा कर सब देख लूँगा। तुम फिक्र क्यों करती हो ? रही बात चाची के दुख देने की तो....।''

'बुराई का बदला भलाई में देना चाह रहे हैं विक्रम भैया' बात काटते हुए दिलीप ने नलू से कहा।

'चाची ने जो करतूत की है उसका बदला जब भगवान् देने लगे तो चले भैया उन्हें बचाने। भैया, तुम मत जाओ जबलपुर।' नलू ने कहा।

'कैसी बातें करती है नलू। अगर मैं नहीं गया तो चाची की मदद कौन करेगा? जो चाची ने बुरा किया है उसका फल वह भोग ही लेगी, परन्तु हम बुरा करके पाप का बोझ अपने सिर क्यों लादें?' विक्रम ने समझाते हुए कहा।

'जिस चाची ने हमारा सब कुछ लूटा, जिसकी वजह से माता-पिता चल बसे, हम दोनों का जीना मुश्किल हो गया, उसे मददगार की क्या जरूरत पड़ गई? जिसके बूते पर उसने हमें इतने दुख दिये, उसे मदद के लिए क्यों नहीं बुलाती? अब आप की याद क्यों आई?' नलू ने तनिक क्रोधित स्वर में कहा।

'नलू, मैं कुछ भूला नहीं हूँ, मुझे सब याद है। परन्तु इसका अर्थ यह तो नहीं कि मैं उनके कठिन समय में उनकी मदद न करूँ? कोई इन्सानियत के स्तर से नीचे गिरता है, तो क्या आवश्यक है कि हम भी उसका साथ दें? बुरा करना और बुरा करने वाले का बदला बुराई से देना आसान है, परन्तु बुराई का बदला अच्छाई में देना...'

'बस...बस भैया....यह सारी फिलासफी आप मेरे लिए छोड़ दीजिए और जबलपुर जाकर बुराई का बदला भलाई में दे दीजिये।' बात काटते हुए दिलीप ने कहा।

'हाँ दिलीप, मुझे लगता है कि मेरा जाना ही ठीक होगा। मैं कल सुबह की बस से जाऊँगा और एक-दो दिन में वापस आ जाऊँगा। नलू मेरे कुछ धुले हुए कपड़े हैं क्या?' विक्रम ने पूछा।

नलू बिना उत्तर दिये कपड़े देखने चली गई। विक्रम दिलीप की ओर देख कर विचारमग्न हो गया। दो क्षण चुप्पी फैली रही, फिर दिलीप ने पूछा, 'भैया, क्या सोच रहे हो?'

'यूँ ही, कई बातें दिमाग में आ रही हैं।' विक्रम ने कहा।

'फिर भी कुछ मालूम तो हो।' दिलीप ने जोर लगा कर पूछा।

'दिलीप, मैं किसी की बुराई कर रहा हूँ, इस दृष्टि से मत देखो, पर मैं वही कह रहा हूँ जो हमारे साथ हुआ है। यह हमारी चाची हैं न, उनकी अजीब कहानी है। मेरे पिता के कारण चाचा-चाची का सब कुछ बना, परन्तु चाचा-चाची के कारण नलू का और मेरा सब कुछ बिगड़ गया और अब चाची ने अपने दुख में हमें ही याद किया है और...।'

'....और तुम्हारे जाने से उनका दुख दूर हो जाएगा; लेकिन फिर भी वह तुमसे बुरा व्यवहार करेंगी, यही न?' विक्रम की बात पूरी करते हुए दिलीप ने कहा।

'हाँ, पर यह भी हो सकता है कि उसका व्यवहार सुधर जाये। उसके अन्दर अच्छाई की भावना उत्पन्न हो जाए।' विक्रम ने कहा।

'यह आवश्यक नहीं है, उसे केवल मात्र एक संभावना कहा जा सकता है। वैसे, मेरा व्यक्तिगत अनुभव कुछ इतना तिक्त है कि तर्क एवं विचारों के ऊहापोह से परे मैं केवल एक ही बात मानता हूँ और उसे आपसे कहते डरता हूँ कि आप बुरा न मान जाएँ।'

'नहीं....नहीं, बोलो ना।' विक्रम ने कहा।

'कुत्ते की पूँछ को बारह साल नली में रक्खो पर जब उसे निकालोगे तो वह टेढ़ी ही रहेगी। दुर्जन लोगों को केवल दुख नम्र बना सकता है; परन्तु जैसे ही उनके दिन पलट जाते हैं वह लोग फिर बुरा कार्य करने लगते हैं। यही दुर्जनों की रीति है।'

'हो सकता है कि ठोकर खाकर वह लोग सुधर जाएँ।' विक्रम ने कहा।

'नहीं मजबूरी में ये लोग सुधरे हुए अवश्य दिखते हैं, परन्तु वास्तव में सुधरते नहीं हैं। या उनकी अपनी करनी उन्हें गरीव बना देती है, अपाहिज बना देती है तभी कुछ समय के लिए ये लोग दीन दिखाई देते हैं और उसके बाद पुनः वैसे ही कठोर और अमानवीय हो उठते हैं। अच्छे और बुरे लोगों में एक यह भी अन्तर है कि बुरे लोग अपने अच्छे दिनों में भी दूसरों का भला नहीं करते और अच्छे लोग अपने बुरे दिनों में भी दूसरों का बुरा नहीं कर पाते।' दिलीप ने कहा।

'हूँ, कहते तो ठीक हो।' विचारमग्न विक्रम ने उत्तर दिया।

'विक्रम भैया, दिल्ली में जहाँ मैं रहता था वहाँ पर हमारे पाँच पड़ोसी थे, सब एक से एक बढ़ कर थे। एक दम्पति थे जो पड़ोस में एक दूसरे दम्पत्ति पर खूब हँसते, फबतियाँ कसते थे।'

'क्यों?' विक्रम ने पूछा।

'इसलिए कि उस पड़ोसी ने महाराष्ट्रियन से विवाह किया था और उनके बच्चे आपस में न हिन्दी में बोलते थे न मराठी में, परन्तु अंग्रजी में बोलते थे। फिर उसी महाशय के बेटे साहब जब बड़े हुए, पता है, उन्होंने क्या किया? उन्होंने एक महाराष्ट्रीय लड़की से प्रेम-विवाह कर लिया। देख लो, यह है दुनियाँ। तुम जिस चीज के लिए दूसरों की ओर उँगली उठाते हो वही चीज भगवान् तुम्हारे घर ही में पैदा करके तुम्हारे गाल पर चाँटा मार देता है।'

'फिर भी तो लोग नहीं समझते। दूसरों की बुराई करने में, दूसरों की ओर उँगली उठाने में बड़ा मजा आता है, परन्तु जब वही बात उनके घर में हो जाती है तब मुँह छिपाते फिरते हैं।' विक्रम ने कहा।....

विक्रम और दिलीप इसी प्रकार बात कर रहे थे और नलू दूसरे कमरे में इस बातचीत को सुनती जा रही थी और साथ ही साथ भैया के कपड़े ठीक करती जा रही थी।

कपड़े ठीक-ठीक करने के बाद वह खाना पकाने में लग गई। खाना पकाते-पकाते नलू ने पूछा....

'भैया कल के सफर के लिए कुछ बना दूँ। कुछ मठरी उतार दूँ।'

'नहीं....नहीं रहने दे। रास्ते में कुछ खा लूँगा। तू फिक्र मत कर।' विक्रम ने कहा।

'कुछ खाना साथ में ले जाओ तो ठीक रहेगा।' दिलीप ने कहा।

'नहीं रहने दो। सफर में ठंडा खाना मुझे अच्छा भी नहीं लगता।'

फिर कुछ रुक कर विक्रम ने कहा....

'दिलीप, मैं जरा सेठ के घर जा रहा हूँ। दो-तीन दिनों की छुट्टी ले आऊँ।'

'हां, यह बहुत जरूरी है।' दिलीप ने समर्थन किया। विक्रम निकल पड़ा। दिलीप आँखें मूँदे लेटा रहा। नलू चुपचाप खाना पका रही थी। घर में चुप्पी फैली रही। कुछ देर बाद दिलीप ने आवाज लगाई, 'नलू एक ग्लास पानी दे।'

नलू पानी लेकर आई तो कुछ झेंपी-झेंपी और शरमाई-शरमाई-सी थी। पैर जैसे आगे न बढ़ने का हठ कर रहे थे और आँखें नीचे झुकी जा रही थीं। गाल उसके लाल हो रहे थे और ओठों को उसने दाँतों से दबा रखा था।

दिलीप ने ग्लास लेने के लिए हाथ बढ़ाया तो आँखें उठाकर नलू की ओर देखा; पर नलू नीचे ही देखती रही। दिलीप को हँसी आ गई, स्वर में मधुरता घोल उसने कहा, 'एक बात बताओगी?

'क्या?' बहुत धीरे से नलू ने कहा। उसका स्वर कांप रहा था।

'यही कि तुम इतनी लज्जित क्यों हो रही हो, अभी तो....'

'हटिए भी....' नलू ने कहा और ग्लास नीचे रखकर भाग गई।

दूसरे दिन सुबह छः बजे विक्रम घर से निकल ही रहे थे कि नलू ने कहा, 'भैया, जल्दी से जल्दी लौटने की कोशिश करना।'

'पगली, तो क्या मैं वहाँ रहने जा रहा हूँ।' विक्रम ने कहा।

'मैं बस-स्टैंड नहीं जा पा रहा हूँ, इसका मुझे अफसोस है विक्रम भैया।' दिलीप ने कहा।

'अफसोस मत करो। जब तक मैं वापस आता हूँ, तुम बिलकुल ठीक हो जाना और मुझे बस-स्टाप पर लेने आना।' विक्रम ने कहा और रिक्शे पर बैठ गया। दिलीप ने मुस्कुरा कर हाथ हिला दिया, रिक्शा चल पड़ा और नलू की आँखें भर आईं। दिलीप वापस आ कर बोला, 'लड़कियाँ वैसे तो' पुरुषों की बराबरी करना चाहती हैं; परन्तु जरा-जरा सी बात पर रोने की आदत नहीं जाती।'

नलू ने किवाड़ बन्द किए और वहीं खड़ी हो कर आँसू पोंछने लगी। दो क्षण बाद दिलीप ने कहा।

'नलू इधर आओ।'

नलू दिलीप के पलंग के पास आ कर खड़ी हो गई।

'आज कालेज से आने के बाद झटपट काम निपटा कर पढ़ने बैठ जाओ। तुम्हें इन दो-चार दिनों में खूब जम कर पढ़ा दूँगा। मैं चाहता हूँ कि तू प्रथम डिवोजन में पास हो, समझी?' दिलीप ने कहा। नलू ने 'नाहीं' में सिर हिला दिया।

'अरे तू मिसेज चटर्जी होने वाली है और मिस्टर चटर्जी सब परीक्षायें प्रथम डिवीजन में पास करते रहे हैं।' कहते हुए दिलीप मुस्कुराने लगे। नलू भी शर्माती हुई मुस्कुरा पड़ी।

कालेज से लौटने पर नलू ने दो पत्र और कुछ पत्रिकायें दिलीप को देते हुए कहा....'नोटिस बोर्ड पर लगे थे इसलिये उठा लाई।'

पत्रों को खोलते हुए दिलीप ने कहा....'अच्छा किया जो ले आई। अब झटपट चाय बनाओ। फिर तुम्हें कुछ पढ़ा दूँ

आज। अरे हाँ, तुम्हारे नाम एक चिट्ठी आई थी।' और पत्र नलू को पकड़ा कर वह अपना पत्र खोलने लगे। अपना पत्र पढ़ते-पढ़ते दिलीप ने नलू की ओर देखा। पूछा...'किसका पत्र है ?'

'पारो दीदी का।'

'पारो दोदी कौन है ?' दिलीप ने पूछा।

'पारो दीदी हमारी चाची के पड़ोस में रहती हैं।'

'क्या लिखा है उसने ?'

'पहले तो बुरी खबर है; परन्तु पत्र के अन्त में एक मजेदार बात है।'

'हाँ तो बताओ न, क्या लिखा है ?' दिलीप ने जोर दिया।

'पारो दीदी ने लिखा है कि चाचा अपने बच्चों के साथ....'

'कितने बच्चे हैं चाचा के ?'

'दो बच्चे थे, एक लड़का और उससे छोटी लड़की।'

'हाँ तो क्या हुआ चाचा को ?' दिलीप ने पूछा।

'वह लोग एक दोस्त की मोटर में भेड़ाघाट पिकनिक पर जा रहे थे तो उनकी मोटर टकरा गयी। दोनो बच्चे अस्पताल आते-आते मर गये। ड्रायवर, चाचा और वह दोस्त अभी तक अस्पताल में पड़े हैं। उन बच्चों के दाह संस्कार के लिये भी चाचा नहीं जा सके। शायद चाचा के पैर सदा के लिये बेकार हो जायें। चाची बहुत परेशान हैं।

'अरे यह तो बहुत बुरा हुआ। बेचारी चाची....।'

'हाँ पत्र में और क्या लिखा है ?'

'लिखा है कि ऐसा कोई तरीका बता दो जिससे हम तुम्हारे भैया को घेर सकें।'

'क्यों भैया ने ऐसा कौन-सा गुनाह किया है कि वह लोग बेचारे को घेरने का स्वप्न देख रहे हैं ?' दिलीप ने पूछा।

'पारो दीदी भैया की शादी अपनी छोटी बहन से करवाना चाह रही हैं।' नलू ने उत्तर दिया।

'अच्छा, यह बात है। पारो की छोटी बहन कैसी है?'

'बहुत अच्छी है। अम्मा को भी वह बहुत पसन्द थी।' नलू ने कहा।

'और भैया को?' दिलीप ने पूछा

'यह मुझे पता नहीं।' नलू ने उत्तर दिया!

'अच्छा मैं पूछ लूँगा उनसे।'

'हाँ आप जरूर पूछियेगा और हो सके तो शादी पक्की कर ही दीजिये उनकी।' नलू ने खुशामद करते हुए कहा।

'हाँ, वह तो मैं करवा दूँगा, पर उनके सिर पर से उनकी बहन का तो बोझा हट जाये।' दिलीप ने चिढ़ाते हुए कहा।

नलू शरमाने लगी। दिलीप उसे देखता रहा। दो क्षण बाद बोला, 'बस....बस, काफी शरमा लिया, कुछ शरमाना आने वाले दिनों के लिए भी बचा रखो। अभी जाकर चाय बना दो तो कृपा होगी।' दिलीप ने कहा।

नलू ने एक बार आँख उठा कर दिलीप की ओर देखा और फिर चाय बनाने चली गयी।

चाय के बाद दिलीप कुमार नलू को परीक्षा की तैयारी के तरीके पर विस्तार से लेकचर दे रहे थे कि अखिल ने प्रवेश द्वार पर खड़े होकर कहा, 'क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ?'

नलू ने अखिल की ओर देख कर कहा, 'हाँ आइये।'

अखिल अन्दर आ कर एक कुर्सी पर बैठकर नलू की ओर देख कर बोला, 'मुझे लगा कि आप लोग मुझे घर में घुसने ही नहीं देंगे।'

नलू ने उत्तर नहीं दिया परन्तु दिलीप की ओर देखने लगी। अखिल भी दिलीप की ओर देखने लगा।

'तुम कैसे आये अखिल?' दिलीप ने प्रश्न किया।

'यूँ ही दीदी से मिलने।' अखिल ने उत्तर दिया।

'तुम्हारी दीदी मर गई है। अब नलू नाम की इस दुनियाँ में कोई तुम्हारी दीदी नहीं है। तुम्हारी काली करतूतों के पहले जो मेरे मन में तुम्हारे लिए भाव थे, वह सब जल कर भस्म हो गये हैं। अब तुम अपने रास्ते जाओ और मैं अपने रास्ते। अगर कभी हम रास्ते में मिलें भी तो अभिवादन करने का कष्ट भी मत करना समझे।' नलू ने यह सब संयत स्वर में कहा। अखिल सिर लटका कर बैठा रहा।

'तुम क्या नलू से माफी माँगने आये थे?' दिलीप ने पूछा।

'यही समझ लीजिये।' अखिल के स्वर में आशा फूटी।

'नहीं, अखिल मैं इतनी महान् नहीं हूँ कि तुम्हें माफ करके मन में वही पहले वाला भाव ले आऊँ, क्योंकि वे भाव बहुत कोमल थे। बड़ी बहन का छोटे भाई के प्रति भाव था, उस कोमल भावना पर तुमने बड़ी क्रूरता से प्रहार किया। अब वह छिन्न-भिन्न हो गया। मैं मजबूर हूँ।' नलू ने कहा।

'जब तक तुझे माफ नहीं करोगी, मुझे शान्ति नहीं मिलेगी दीदी।' अखिल ने कहा....

'तो तुम यह चाहते हो कि मैं मुँह से कह दूँ कि माफ कर दिया और मन में कड़ुवापन संजोये रक्खूँ। तुमने वह नीच काम किया है, जिसके लिए शायद तुम्हारा मन भी तुम्हें माफ नहीं करेगा। तुमने मुझे ऊपर से दीदी कहा और मन में प्रेयसी की कल्पना करते रहे। जो नीच, बहन कह कर मन में बहन का भाव नहीं रख सकता वह शायद माँ कहकर माँ का भाव भी नहीं....'

'बस करो, और सुना नहीं जाता।' कहता हुआ अखिल घर से निकल पड़ा!

'अरे यह तुमने बुरा किया।' दिलीप ने कहा।

'क्या बुरा किया, अगर मैं इतनी आसानी से माफ कर दूँ तो वह यही करतूत किसी दूसरी लड़की से करेगा। इसलिए ठीक यही है कि वह पश्चात्ताप की आग में जल कर शुद्ध हो जाये।' नलू ने कहा।

'अरे बहुत समझदार हो गई है तू, हाँ कुछ आगे बोल, जिससे मैं भी समझदार हो जाऊँ।' दिलीप ने चिढ़ाते हुए कहा।

नलू चुप हो गई और मुँह फेर कर मुस्कुराने लगी।

दो दिन बाद रात के नौ बजे जब विक्रम लौटे तो दिलीप नलू को पढ़ा रहे थे। दिलीप की आवाज बाहर साफ सुनाई दे रही थी। विक्रम रिक्शे से उतरे, किवाड़ खटखटा कर सामान उतारने लगे, फिर रिक्शे के पैसे चुका कर घर में वे प्रवेश करते हुए बोले, 'अरे दिलीप, तुम नलू को पढ़ा रहे थे कि मोहल्ले भर को पढ़ा रहे थे।'

'मैं बहुत जोर से बोल रहा था?' दिलीप ने पूछा—

'तो और क्या। मैं रिक्शे में बैठा-बैठा सब सुन रहा था।' विक्रम ने कहा।

'पचास-साठ विद्यार्थियों को एकदम पढ़ाते-पढ़ाते जोर से बोलने की आदत पड़ गयी है। खैर, छोड़ो इन बातों को, चाचा-चाची के क्या हाल हैं?' दिलीप ने पूछा।

अब तक नलू सामान अन्दर ला कर किवाड़ बन्द कर चुकी थी। खाट पर बैठते हुए विक्रम ने कहा, 'उनके बहुत बुरे दिन आ गये हैं।'

'वह तो हमें मालूम हो गया।' नलू ने कहा।

'तुम्हें कैसे मालूम हुआ।' विक्रम ने पूछा।

'पारो दीदी का पत्र आया था। मुन्नी और बाबू तो एक्सीडेण्ट में ही चल बसे और चाचा के पैर में चोट आई है।' नलू ने कहा।

'पैर में चोट आई है, उनके पैर बेकार हो गये। दोनों पैर घुटनों से काट कर फेंक दिये गये। अब जीवनभर चाचा खाट पर पड़े रहेंगे।' विक्रम ने उदास स्वर में कहा।

'अरे यह तो बहुत बुरा हुआ।' दिलीप ने कहा।

कुछ क्षण चुप्पी छाई रही। फिर विक्रम नहाने चला गया। नलू खाना पकाने में लग गई। दिलीप विचारमग्न बैठा रहा।

दूसरे दिन चाय पीते हुए दिलीप ने पूछा, 'पारो दीदी के घर गए थे ?

'पारो दीदी कौन ?' विक्रम ने पूछा

'हाँ, तुम्हारी जबलपुर वाली पारो दीदी।'

'हाँ....हाँ, पर तुम्हें कैसे मालूम हुआ उनके बारे में ?

'अरे कल ही तो नलू तुमसे उनके पत्र के सम्बन्ध में चर्चा कर रही थी न ?' दिलीप ने समाधान किया।

'अच्छा....अच्छा। गया तो था। अच्छी है, उनके एक और लड़का हुआ है।' विक्रम ने बताया।

'कोई विशेष बात हुई क्या ?' 'विशेष बात ? विशेष बात क्या होती है। हाँ, उनकी एक छोटी बहन है....'

'कैसी है देखने में ?'

'क्यों ? तुम्हें क्या करना है' विक्रम दिलीप के प्रश्न पर कुछ चौंक सा पड़ा।

'कुछ नहीं, यूँ ही पूछा।'

'अच्छी है, गोरी, चिट्टी है। बड़ी बड़ी आँखें हैं....।' कहते कहते विक्रम रुक गया। उसने देखा दिलीप उसके चेहरे पर आँख गड़ाए इस तरह देख रहा था, जैसे शिक्षक विद्यार्थी को परीक्षा-भवन में नकल करते देख रहा हो। दिलीप के ओठों पर एक अजीब-सी मुसकान थी और आँखों में चमक। विक्रम उस दृष्टि को सह नहीं सका। एकदम झेंप गया।

'अरे चुप क्यों हो गए ?' दिलीप ने विक्रम को छेड़ा। 'अभी तो नाक, कान, होंठ, गाल बहुत कुछ बाकी है।'

विक्रम हँस पड़ा बोला....'तो तुम अभी से मज़ाक करने लगे, क्यों ?'

'एक बात कहूँ।' दिलीप ने गंभीर होते हुए कहा....'मानोगे तो कहूँगा।'

'कहो, मानने लायक होगी तो अवश्य मानूँगा।' विक्रम ने कहा।

'तुम पारो दीदी की बहन से शादी कर लो।'

'तुम्हारा दिमाग तो ठीक है न ?'

'हाँ, चोट सिर्फ सिर के ऊपरी भाग पर लगी थी, डाक्टरों ने बताया था कि दिमाग पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा।'

'पर मुझे तो ऐसा ही लगता है कि दिमाग पर प्रभाव पड़ा है वरना तुम शादी की बात हर्गिज न करते।'

'तुम्हारा मतलब है, जो शादी करते हैं उनका दिमाग खराब होता है।'

'नहीं ! यह बात नहीं है दिलीप। लेकिन इस क्लर्की में रहकर एक श्रीमती जी को पालना मेरे लिये कठिन हो जाएगा। नलू की बात दूसरी है। बहन है न। उसे चाहे जैसे रखूँगा बुरा न मानेगी। पर श्रीमती जी कठिनाइयाँ क्यों सहन करने लगीं ? और यह क्लर्की है न दिलीप, बड़ी जलालत की नौकरी है। चपरासी से लेकर मालिक तक हम लोगों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, जैसे हमारा न तो कोई अस्तित्व है, न हममें आत्मा ही है।' विक्रम ने भारी स्वर में कहा।

'तो क्या जिन्दगी भर कुँवारे ही रहोगे ?'

'ऐसा तो नहीं कह सकता। हाँ अभी घर गृहस्थी की-झंझट में फंसना नहीं चाहता। सोचता हूँ, नलू का ब्याह हो

जाए उसके वाद किसी तरह एम० ए० का अध्ययन कर डालूँ। अगर भाग्य से अच्छा डिवीजन मिल गया तो शायद क़िस्मत पलट जाए।'

'तुम्हें मेरी योग्यता पर विश्वास है ?' दिलीप ने पूछा।

'हाँ, क्यों नहीं ?'

'और अगर तुम्हें अच्छे डिवीजन में पास कराने का जिम्मा मैं ले लूँ तो तुम शादी के लिए राजी हो जाओगे ?'

विक्रम चुप हो गया। उसकी समझ में नहीं आया कि वह दिलीप को क्या उत्तर दे। तभी नलू आ गई। दिलीप ने नलू को 'जज' बनाया और कहा... 'अन्तिम निर्णय तुम्हारे हाथ है और जो फैसला तुम करोगी वह विक्रम भैया को मानना पड़ेगा!' और अभी तक जितनी बातें विक्रम और उसके बीच हुई थीं उसे बता दी। नलू तो चाहती ही थी कि उसके भैया की भी शादी हो जाए।....अतः उसने फैसला दिलीप के पक्ष में किया। जब तक यह 'नाटक' चलता रहा विक्रम चुपचाप उसे देखता रहा। परन्तु जब फैसला उसके विरोध में हुआ तो वह चुप न रह सका। नलू से बोला....

'हाँ, अब तू मेरी तरफ से क्यों बोलेगी, तू तो....' नलू बीच में ही बोल पड़ी....'जाओ हम तुमसे नहीं बोलते।' और उठकर जाने का उपक्रम करने लगी पर दिलीप ने उसे बिठा लिया, कहा....'जब तक फैसला न हो जाए, तुम जा नहीं सकती।' फिर विक्रम की ओर देखकर उसने कहा....

'तो भैया, यह तय रहा कि नलू की शादी के साथ ही या उसके फौरन बाद तुम पारो की बहन यानी....'

'श्यामा।' नलू ने कहा।

'यानी श्यामा से सगाई कर लोगे और एम० ए० होने के साथ ही शादी भी। बोलो हाँ....।'

'भैया, हाँ कह दो न।' नलू ने लाड़ से कहा।

'हाँ बाबा, हाँ। बस।' विक्रम ने वहाँ से उठते हुए कहा।

दिलीप ने विक्रम का हाथ पकड़ लिया और कहा, 'भाग कहाँ रहे हो। अरे नलू! जरा मिठाई तो ला। इनका मुँह मीठा करा दें और देख जरा मेरा लेटर पैड भी ला देना पारो दीदी को चिट्‌टी लिख दूँगा अभी ही।'

'तुम तो...' विक्रम ने कहा। परन्तु उसकी बात नलू और दिलीप की हँसी में डूब गई।



लीला अवस्थी हिन्दी की प्रतिभाशालिनी लेखिका हैं इनकी लेखनी से निःसृत उपन्यास, कहानी, रेडियो-रूपक आदि ने पाठकों के हृदय में अपना आदरयुक्त स्थान बना लिया है। आप की एक कृति भारत सरकार के शिक्षा-विभाग द्वारा पुरस्कृत हो चुकी है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने समाज की जर्जर मान्यताओं पर प्रहार किया है एवं नये दृष्टिकोण से समस्या का समाधान प्रस्तुत किया है।

1/-

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय